रामाश्रम सत्संग डिजिटल प्रकाशन

संत-वचन

(भाग-8)

ब्रह्मलीन महात्मा

डॉ. श्रीकृष्ण लाल जी महाराज

के प्रवचनों का संकलन

रामाश्रम सत्संग (रजि.)

9-रामाकृष्ण कॉलोनी, जी. टी. रोड,

गाजियाबाद-201009 (उ.प्र.)

प्रस्तावना

हम सब के लिए अत्यन्त सौभाग्य का विषय है कि रामाश्रम सत्संग के डिजिटल प्रकाशनों की श्रंखला में परम पूज्य गुरुदेव ब्रह्मलीन महात्मा डॉ. श्रीकृष्ण लाल जी महाराज के प्रवचनों का संकलन - भाग 8 डिजिटल फॉर्म में उपलब्ध कराया जा रहा है.

मेरा ऐसा मानना है कि पूज्य गुरुदेव के प्रवचनों की जो अमूल्य वर्षा हो रही है उससे प्रेरणा लेकर तथा उनकी प्रवचन प्रसादी पाकर हम सबको भी अपने जीवन को वैसा बनाने का प्रयास करना चाहिए जैसा वे हमें बनाना चाहते थे. हम ग्वालियर के प्रोफ. आदर्श किशोर सक्सेना को उनके द्वारा दिए गए सहयोग के लिए साधुवाद देते हैं.

पूज्य गुरुदेव से प्रार्थना है कि उनके अमूल्य प्रवचनों की अमृत धारा के पवित्र प्रवाह को जन-जन तक पहुंचाने का अवसर हमें बार-बार प्राप्त होता रहे.

उम्मीद है कि पाठकों को हमारा यह प्रयास पसंद आएगा.

- डा. शक्ति कुमार सक्सेना

विषय–सूची

1. अभ्यास में तरक़्क़ी की परख 1

2. भजन सुममरन का तरीक़ा 5

3. आंतरिक अभ्यास के दो प्रारम्भिक चक्र 7

4. इन्सानी ज़िंदगी का आदर्श 12

5. ईश्वर के नाम का जप ईश्वर तक पहुँचाता है 14

6. गुरु का काम सेवा और सहारा देना है 16

7. गुरु का प्रेम पाने के लिए शिष्य क्या करे ? 18

8. चाह और दीनता 21

9. ज़िंदगी में रूहानियत लाओ 23

10. दीन भाव 27

11. दीनता परमार्थ में अनिवार्य है, तथा अहंकार बाधक 29

12. पढ़ो और मनन करो.....31

13. परमार्थ दीनता से बनता है.....34

14. मनमानी मत करो.....36

15. मनुष्य जीवन का आदर्श सच्चे आनंद की प्राप्ति करना है.....39

☆अभ्यास में तरक्क़ी की परख☆

कुछ सत्संगी जिनको सदगुरु की शरण में आये केवल दो चार वर्ष ही हुए हैं, वे अपने अन्तर में तरक्क़ी यानी अपने मन को अन्तर्मुखी हुआ कम पाते हैं या नहीं पाते हैं. यह विचार ठीक नहीं है क्योंकि उनको अपनी हाल की परख नहीं है या कि उनको अपने मौजूदा हाल और पिछले हाल की जानकरी ठीक -ठीक नहीं है जो कोई भी सच्चे मन और सच्चे शौक़ से संतमत को अखत्यार करके प्रेम से थोड़ा बहुत अभ्यास दो मरतबा हर रोज़ सुरत शब्द मार्ग और सुमरन और ध्यान कर रहा हैं तो यह नहीं होगा कि वह सतपुरुष दयाल की दया से ख़ाली रहे . उसे थोड़ा बहुत रस और आनन्द भजन और ध्यान का ज़रूर आवेगा.

उसका मन थोड़ा बहुत निश्चल होकर अभ्यास में लगने लगेगा. शब्द पहले मुक़ाम का जागृत हो जायेगा और अभ्यास के बक्त मन और सुरत शब्द की डोर का आनन्द लेते हुए, इस कदर अन्तर में लग जावेंगे कि दुनियाँ की भी ख़बर और सुधि नहीं रहेगी यानी दुनियाँ से मन कमज़ोर पड़ता जायेगा. ऐसी हालत का कभी - कभी या रोज़मर्रा हो जाना बहुत खुशकिस्मती है. सतगुरु सतपुरुष दयाल अभ्यास की चाल के मुआफ़िक जैसा मुनासिब समझते हैं तरक्क़ी देते हैं, यानी उसके मन और सुरत का सिमटाव और चढ़ाई करते जाते हैं. इसका सरूर भी उसको अपनी दया से थोड़ा बहुत हज़म कराते जाते हैं, नहीं तो इस क़दर रस पाकर बहुतेरे अभ्यासी मस्त होकर घर - बार और कारोबार छोड़ने को तैयार हो जावें. उनकी अवधूत की सी हालत हो जावे.

जिन प्रेमियों को अपने अभ्यास के समय ऐसी हालत की पहिचान कम हो तो उसकी वज़ह यह है कि उसको संसारी विचार अक्सर भजन और ध्यान में सताते हैं. उसको चाहिए कि वह अपनी एक या दो वर्ष गुज़री हुई पहले की हालत से मुक़ाबिला करे और यदि वह सच्चा सत्संगी और सच्चा अभ्यासी है तो उसको और उसके घर वालों को इस क़दर ज़रूर मालूम पड़ेगा कि पहले की निस्बत उसकी तबियत संसारी लोगों के संग में और संसारी बातों में कम लगेगी.वह दुनियावी विचारों से भी छूट पाने लगेगा, फ़िज़ूल और नामुनासिब चाहें और दुनियाँ के भोगों की तरंगे कम होती जावेंगी. उसका जीवन सरल बनता जावेगा. सत्संग, वाणी और गुरु वचन में और सतनाम में उसकी प्रीती और प्रतीती पहिले से ज़्यादा होती जायेगी . इस समय सतनाम की विशेष महिमा है. सतपुरुष दयाल अपने सच्चे परमार्थी जीवों को ऐसे रास्ते और ऐसी युक्ति से चलाते और चढ़ाते हैं कि जिससे उनके दुनियावी किसी कारोबार में हर्ज़ भी न होवे और परमार्थ में आला दर्जा सहज में बेमालूम हासिल होता जावे.

सच्चे और प्रेमी अभ्यासी को चाहिए कि वह सत्संग में बैठकर अच्छी तरह से निर्णय कर ले और इन पाँच बातों को गौर से सुनकर, समझकर अपने मन के भरम, संदेह और शकों को जिस कदर जल्दी हो सके दूर करे वरना वह अभ्यास में बाधा डालेंगे और मन और सुरत को सफ़ाई और शौक़ के साथ भजन और ध्यान में लगने नहीं देंगे. ये पांच बातें निम्नलिखित हैं :

१. इस बात का निश्चय कि केवल सतगुरु दयाल ही कुल मालिक और सर्वसमर्थ हैं. कुल रचना के सच्चे माता पिता वही हैं.

२.यह कि सुरत शब्द मार्ग सच्चा, पूरा, और सहज धुरपद तक पहुँचाने वाला रास्ता और तरीक़ा अभ्यास का है. असली परमार्थ वहाँ शुरु होता है जहाँ दीन और दुनियाँ का अन्त है. अपने को राम - चरित्र के आदर्श तक पहुँचाना केवल इस दुनियाँ में धर्म के शिखर तक पहुँचना होता है.

३.यह कि मन और इंद्रियों का स्वभाव माया के मसाले का है और इस वास्ते उनका असली झुकाव बाहर और नीचे की तरफ़ संसार के भोग और पदार्थों में है. मन का फ़िज़ूल तरंगे और ज़रूरत से ज़्यादा चाहें उठाने में हर्ज़ और नुक्सान है. इसलिए अभ्यासी को थोड़ा बहुत शौक़ और सम्भाल अपने मन और इंद्रियों की, ख़ासकर वक़्त अभ्यास के बहुत ज़रूरी है , नहीं तो भजन और ध्यान का रस जैसा चाहिये वैसा नहीं आवेगा.

४.यह कि दुनियाँ और दुनियाँ परस्त और गैर - ख़्याल वालों के संग से और धन वालों की मुहब्बत और संग से सच्चे मालिक के चरणों के प्रेम में और अभ्यास में बिघ्न और ख़लल पड़ता है. इसलिए यह ज़रूरी है कि ऐसे जीवों का संग और मुहब्बत उसी क़दर रखी जावे जिस क़दर ज़रूरी है और मुनासिब है. उसमें अपने दिल को बांधना या अपना वक़्त बेफ़ायदा उनके संग में या दुनियाँ की गप - शप में ख़र्च करना अभ्यासी को ठीक नहीं है. जिन लोगों को किताबें पढ़ने का शौक़ होता है वे वक़्त को बहुत सम्भाल कर ख़र्च करते हैं यानी सिवाय रोज़गार और देह और गृहस्थ के ज़रूरी कामों के बाकी वक़्त किताबों में बिताते हैं, तो फिर परमार्थी अभ्यासी को किस क़दर ख़्याल अपने क़ीमती वक़्त का होना ज़रूरी है, गौर तो कीजिये .

५.सतनाम में प्रीति और प्रतीत और सतगुरु दयाल के चरणों में सच्ची शरण और उनकी दया और मेहर का आसरा और भरोसा सदा रखना .

प्रीत

ज्ञान मार्ग की साधना के लिए तीव्र बुद्धि तथा इच्छा शक्ति की आवश्यकता है . विवेक तथा वैराग्य से यह साधना प्रारम्भ की जाती है . इसके पश्चात् षठ सम्पति की क्रियाएं की जाती हैं . ये साधन जन साधारण के लिए कठिन होने के कारण उपयोगी नहीं हैं , परन्तु प्रेम मार्ग सरल तथा सुगम है . लेकिन प्रेम में विरह तथा अभीप्सा होनी चाहिये . प्रेमी ईश्वर की खोज में इतना व्याकुल हो जाए कि उसे ईश्वर के अतिरिक्त कुछ और सूझे ही नहीं . प्रभु प्राप्ती के लिये वह निरन्तर पागल सा बना रहे .

ज्ञान मार्ग में त्याग पर बल दिया जाता है . प्रेम में भी त्याग की भावना स्वभावतः आ जाती है . प्रेम एक से होता है . इसलिए प्रेमी ईश्वर के लिये सब कुछ न्योछावर कर देता है . जब तक साधक माया की वस्तुओं के मोह से मुक्त नहीं होता वह प्रेम प्राप्त नहीं कर सकता . मोह तथा अहँकार का त्याग आवश्यक है .

" रे मन , ऐसी हर सौं प्रीतकर जैसी जल कमलोही
लहरी नाल पछाड़िये , भी बिगसै अस्नेह ,
जल में जीअ उपाय के , बिन जल मरण तिनीह .

हे मनुष्य ! ईश्वर से ऐसा प्रेम कर जैसे जल के साथ कमल का होता है . कमल पानी की चोंटे बार - बार खाता हुआ भी खिला रहता है . इसी प्रकार जो पुरुष ईश्वर से प्रेम करते हैं , उनको चाहें कितने ही दुःख आएं , वे दुःखों को सहन करके भी प्रसन्न चित्त रहते हैं तथा माया के प्रभाव से मुक्त रहते हैं . प्रेमी ईश्वर को किसी तरह का भी दोष नहीं देते . उसे अपने जीवन का आश्रय मानते हैं . उसे भूलने को अपनी मृत्यु समझते हैँ .

" अन्तर पिरी प्यार , किऊँ पिर बिन जीवीए राम
जब लग दरस न होए , किउं अमृत पीवीए राम ."

जैसे जल के किसी जीव को जल से बाहर निकाल दिया जाये तो उसकी मृत्यु हो जाती है , उसी प्रकार प्रेमी की अवस्था होती है . प्रेमी एक क्षण के लिए भी ईश्वर के नाम को नहीं भूलता .

प्रेम के अतिरिक्त मनुष्य को और कोई रास्ता नहीं है जिससे कि वह भव सागर (जन्म -मरण) से मुक्त हो सके . इसलिए महापुरुष कहते हैं कि क्षणभंगुर और परिवर्तनशील सृष्टि की वस्तुओं से मुँह मोड़कर ईश्वर के चरण कमलों में अपना ध्यान लगाओ . ईश्वर कहीं दूर नहीं है , वह तो मनुष्य के अन्तर में है , उसके समीप जाने

का प्रयत्न करना चाहिये . मनुष्य भ्रम वश यह विचार करता है कि ईश्वर कहीं दूर है . इस भ्रम से मुक्त होना चाहिये .

" रे मन , ऐसी हर सों प्रीत कर जैसी मछली नीर

ज्यों अधिकों तियों सुःख घणो , मन तन सांत सरीर

बिन जल घड़ी न जीवेई , प्रभु जाने अभ पीर . "

हे मनुष्य ! ईश्वर से ऐसा प्रेम कर जैसे मछली का पानी से सम्बन्ध होता है . जैसे -पानी अधिक होता है वैसे ही मछली अधिक प्रसन्न होती है . इसी तरह अन्तर में अधिक प्रेम होने से अधिक शांति का अनुभव होता है . जितना प्रेम बढ़ता जाता है , उतनी ही अन्तर में शांति (मन की वृत्तियों से शांति) मिलती जाती है . जल बिना मछली एक क्षण भी जीवित नहीं रह सकती . जल वियोग से मछली के हृदय में जैसी पीड़ा उठती है , वैसी ही प्रेमी के अन्तर में होनी चाहिये .

" रे मन , ऐसी हर सौ प्रीत कर जैसी चात्रिक मेंहू

सर भर थल हरि -आवले , इक बूंद न पावई केह

कर्म मिले सो पाइये , किरत पया सिर देह . "

हे मन ! ईश्वर के साथ ऐसी प्रीत कर जैसी पपीहे की बादल के साथ होती है . वर्षा होने से नदियाँ आदि पूर्ण हो जाती हैं , चारों ओर वनस्पति प्रसन्नचित अनुभव होती है , परंतु यदि पपीहे के मुख में स्वांति बूंद न पड़े तो उसको ऐसी वर्षा से क्या लाभ ? इसी प्रकार यदि परमार्थी को शान्ति नहीं मिलती तो उसके लिये सर्व प्रकार की वस्तुओं का सुःख प्राप्त होते हुए भी उसका कोई लाभ नहीं है . वह तो तभी हर्षित होगा जब उसे प्रेम की प्राप्ती होगी . इसके लिए चात्रिक की तरह निरन्तर अपने प्रीतम की ओर निहारते रहना चाहिये , प्रेम की निरन्तर अभीप्सा रहनी चाहिये . प्रभु दयानिधि हैं , प्रेम के सागर हैं . अवश्य कृपा होती है

. ☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆

राम संदेश / मई - जून , २००७.

भजन सुमिरन का तरीक़ा

मन में तरंगें उठें तो सुमिरन व भजन करना चाहिए . सुरत को तीसरे तिल में समेटें . दोनों आँखों की रौशनी जहाँ मिलती है , वही ध्यान करना चाहिए. वहां ध्यान ज़माने से प्रकाश नज़र आएगा. शब्द भी वहीं सुनाई देगा परन्तु उसे अन्तर में सुनना चाहिए. गुरु का ध्यान करना स्थूल , व शब्द का सुनना अथवा प्रकाश का देखना सूक्ष्म है. गुरु का ध्यान करते-करते जब प्रकाश दिखाई देने लगे, अथवा जब शब्द सुनाई पड़ने लगे तो फिर ध्यान को छोड़कर उसी अभ्यास को करने लगना चाहिए.

अगर प्रकाश देखने या शब्द सुनने के साथ-साथ गुरु का ध्यान भी करते रहें तो चित्त ठिकाने नहीं रहेगा और दोनों में से कोई भी नहीं हो सकेगा. नियमित ढंग से साधन में जब पुष्टता आएगी तभी शब्द और ध्यान दोनों चल सकते हैं. तस्बीर को सामने रख कर या किसी मूर्ति आदि पर ध्यान नहीं करना चाहिए. अगर गुरु सामने मौजूद हों तो भी उनकी ख्याली शक्ल का ही ध्यान करना चाहिए , हांलाकि यह ख्याली शक्ल का ध्यान भी स्थूल ही माना जाता है, पर शुरू-शुरू में अभ्यासियों को ऐसा करना कठिन होगा. चूंकि आत्मा के केंद्र में ही परमात्मा है अतः उनका अनुभव हांसिल करने के लिए ऐसी हालत पर आना है जहाँ कोई ख्याल न हो.

ध्यान अन्तर में होवे , इसके लिए यह आवश्यक है की हमारी सुरत (attentioin) जो अभी बाहरी पदार्थों में लगी हुई है - वहां से हटे और सिमट कर अन्तर में लौटे. मन की धार यानी संकल्प-विकल्प जब तक शांत नहीं होंगे तब तक ध्यान पक्का नहीं हो सकता . मन काल का अंश है . यह सुरत को दुनियांवी पदार्थों की तरफ खींचता और बिखेरता रहता है. मन दुनियां में सबसे अधिक तीव्र गति वाला और महा चंचल है, कभी शांत नहीं रह सकता. इसकी मिसाल शांत-प्रशांत तालाब के जल से दी गयी है. जैसे प्रशांत जल में हवा चलने से या हलकी से हलकी चीज़ फेंकने पर छोटी-छोटी तरंगें उठने लगती हैं वैसे ही इन्द्रियों के प्रभाव से या शरीर के ज़रा से हिलने मात्र से मन में संकल्प-विकल्प उठने शुरू हो जाते हैं.

योग, यज्ञ , तप, तीर्थ, व्रत, नियम, पूजा इत्यादि जो कुछ भी साधन किये जाते हैं , पहले पहल सब मन को शांत करने के लिए ही किये जाते हैं. इन तरंगों की रोक-थाम सुमिरन व भजन से की जाती है. इसमें भींचा-भीची करनी पड़ती है. मन को वासनाओं से हटाना भींचा-भीची कहलाती है. इसके लिए सन्त लोग कम खाना,कम सोना, कम बोलना , एकांत सेवन और ज़्यादातर समय ध्यान में मशगूल (रत) रहने की सलाह देते हैं.

सुख प्राप्ति से मन मोटा होता है. सुख, साधन में महा बाधक होता है. परमात्मा की याद दुःख में ही आती है. इसीलिए दुखों को परमारमा की नियामत समझा जाता है. कहा भी है –

सुख के माथे सिल परें , जो नाम हिये से जाय

बलिहारी वा दुःख की , जो पल-पल नाम रटाय .

मन व माया को कमज़ोर करने के लिए अपने आप को दीन समझें. जब तक दीनता नहीं आती, तब तक आपा नहीं मिटता . आपा मिटे वगैर आत्मा का साक्षात्कार नहीं हो सकता और आत्मानुभव के बिना उद्धार नहीं होता है. स्वार्थ और परमार्थ साथ-साथ नहीं रह सकते .केवल एक ही रह सकेगा . खुदा को पाने के लिए खुदी को निर्मूल करना पड़ेगा और वह तभी होगा जब दुनिया से सच्चा वैराग और गुरु चरणों में अनुराग होगा . वैराग का यह मतलब कभी नहीं कि घर-बार , स्त्री, परिवार आदि को छोड़ कर जंगल में चला जाए. जंगल में जाने से भी भला वैराग हो सकता है? शरीर और मन तो वहां भी मौजूद रहेंगे . और जब ये रहेंगे तो इनके व्यवहार भी करने पड़ेंगे,

सच्चे मायने में वैराग का अर्थ वीतराग होना है, यानी किसी चीज़ में राग (आसक्ति) न हो. शरीर से सब कुछ भोगता हुआ भी किसी चीज़ से लगाव न रहे और न कहीं अटकाव हो. चरणों में अनुराग से मतलब है कि हर समय अपने को , अपनी सुरत को परमात्मा के चरणों में लगाए रखें और उसकी मौज़ में अपने को ले करदें . इस रास्ते में अनेकों कठिनाइयां आएंगी , परन्तु उनसे घबराएं नहीं , धैर्य पूर्वक गुरु में पूर्ण प्रीति और प्रतीत के साथ उनका बताया हुआ साधन करते जाएँ. कामयाबी अवश्य मिलेगी.

==========

आन्तरिक अभ्यास के दो प्रारम्भिक * चक्र *

सन्त मत के आचार्य जिज्ञासुओं को आन्तरिक अभ्यास बहुधा दो में से किसी एक चक्र से शुरु कराते हैं. (१) हृदय चक्र जो बक्षस्थल के बाईं ओर निप्पल (nipple) के एक इंच अन्दर की तरफ़ है जहाँ पर धड़कन होती है.(यहाँ मनुष्य का रजोगुणी मन होता है). (२)आज्ञा चक्र (दोनों भौंहों के बीच में एक इन्च नीचे का स्थान. यह बात जिज्ञासु के मन की हालत पर निर्भर होती है. मन की तीन अवस्थायें होतीं है. (१) तमोगुणी मन (२) रजोगुणी मन, और (३) सतोगुणी मन . तमोगुणी मन सबसे निचली अवस्था है जिसमें मनुष्य की हैवानी (पाशविक) वृत्तियाँ बलवान होतीं हैं और ऐसे आदमी के लिए परमार्थ कोई मायने नहीं

रखता.तमोगुणी मन को सूफ़ियों में ' सिफली ' मन कहा है. यह 'नफ़्से अम्मारा 'का मुक़ाम है यांनी हैवानी (पाशविक) वृत्तियाँ यहीं से शुरु होती हैं. बीच का मन तमोगुणी मन कहलाता है जो सूफ़ियों का ' नफ़्से लववामा ' का मुक़ाम है यानी यहां पर अच्छी और बुरी वृत्तियाँ मिले जुले रूप में रहती हैँ. सतोगुणी मन सबसे ऊपर का मन है जिसे सूफ़ियों ने ' उलवी ' मन कहा है. यह ' नफ़्से मुत्तमय्यना ' का मुक़ाम है यानी इस स्थान पर सत वृत्तियाँ काम करती हैं. तमोगुणी मन वालों के लिये आन्तरिक अभ्यास नहीँ बताते बल्कि किसी कर्म पर डाल देते हैं, जैसे किसी नाम का मौखिक उच्चारण, माला का जाप आदि. यदि इस अभ्यास को करते रहें तो वे आलस्य, मैथुन तथा क्रोध आदिक तामसिक वृत्तियों से ऊपर उठ जायेंगे और आन्तरिक अभ्यास के अधिकारी बन जायेंगे. ऐसे लोगों के लिये सन्त मत नहीं है. सन्त मत का अभ्यास अधिकतर उन लोगों के लिए है जो रजोगुण की अवस्था में हैं या उससे ऊँचे उठकर सतोगुण की अवस्था पर आ गए हैं. तमोगुणी मन का स्थान टूंडी (नाभि) पर है और उलवी यानी सतोगुणी मन का स्थान आज्ञाचक्र पर है. हृदय चक्र इन दोनों के बीच में आता है. विचार हृदय से ही उठते हैं. तमोगुणी मन नीचे की ओर खींचता है और सतोगुणी मन ऊपर की ओर. दोनों में संघर्ष और खींचा -तानी बनी रहती है जिसे देवासुर संग्राम कहा गया है. जब तक मनुष्य इन्द्रिय -भोग और मन की इच्छाओं को पूरा करने में लिप्त रहता है तब तक उसका झुकाव नीचे की ओर रहता है और जब उनसे हटकर सतविचार और सतकरमों की ओर झुकता है तब उसकी चढ़ाई ऊपर की ओर होतीं है और वह ' सत ' पर आ जाता है. ब्रह्माण्डी मन तक सतोगुणी अवस्था रहती है और उससे ऊपर जाने पर मन नीचे रह जाता है और आत्मा शान्ति का अनुभव करने लगती है.

जो लोग चंचल स्वभाव के होते हैं उन्हें हृदय चक्र से और जो गंभीर (sober) स्वभाव के होते हैं उन्हें आज्ञा चक्र से अभ्यास शुरु कराते हैं. हृदय चक्र पर अभ्यास (प्रकाश का ध्यान) करने से मन शान्त होने लगता

है और सतोगुण की तरफ़ रुज़ू होने(झुकने) लगता है. सतोगुण पर पहुँच कर अभ्यासी गंभीर (sober).होने लगते हैं और अभ्यास करते - करते वे आज्ञाचक्र पर टिकने लगते हैं. उनकी सुरत नीचे के स्थानों से निकलकर ऊपर स्थित हो जाती है. पांचों दुश्मन (काम , क्रोध , लोभ , मोह और अहँकार) उनके क़ाबू में होते हैं. माला का सुमेर का दाना सबसे ऊँचे स्थान पर रहता है और सबको क़ाबू में किये रहता है. इसी तरह जब सुरत चढ़ कर ऊँचे स्थान यानी आज्ञा चक्र में स्थित हो जाती है तो नीचे के सभी चक्रों तथा उनसे उठने वाली वृत्तियों को क़ाबू किए रहती है.

मनुष्य के शरीर में दो शक्तियाँ काम कर रहीं हैं. एक का रुख (गति) बाहर को है और दूसरी का अन्दर को. मन का रुख बहिर्मुखी है और आत्मा का रुख अन्तर्मुखी. जब मन बाहर से मुड़कर अन्दर को चाल चलने लगता है और शुद्ध हो जाता है तब वह आत्मा में शामिल हो जाता है यानी बजाय आत्मा पर हुक़ूमत करने के वह मातहती (आधीनता) में आ जाता है और जब आत्मा के ऊपर से इच्छाओं के आवरण दूर हो जाते हैं तब वह शुद्ध होकर ईश्वर से मिल जाती है. यही मोक्ष है.

तमोगुणी मन मनुष्य को इंद्रियभोगों में फंसाता है और रजोगुणी मन वासनाओं में. इन दोनों को साधकर सतोगुणी मन में मिला दो और ऊपर की ओर चलो. जब तक मनुष्य दुनियादार रहता है तब तक रजोगुणी मन में व्यवहार करता है यानी रजोगुणी मन में ही तामसिक और सात्त्विक वृत्तियाँ मिलाए रखता है. परमार्थी अभ्यासी तमोगुणी अवस्था को पहले रजोगुणी अवस्था में मिलाता है और फिर वहाँ से भी उसे ऊपर खींच कर सतोगुणी मन में मिला देता है. इसके बाद यह तीनों मन आत्मा में मिल जाते हैं और आत्मा ईश्वर में लय हो जाती है. यहीं समाधी अवस्था है.

दुनियादारों को फिक्र इंद्रिय भोग की रहती है. वे ऊपर के दो मनों को (यानी सतोगुणी मन और रजोगुणी मन) को नीचे खेंच लेते हैं और गिरते चले जाते हैं यहां तक कि जानवर दशा को पहुँच जाते हैं. इसलिए अभ्यासी का यह कर्त्तव्य है कि कोशिश करके अपने मन को तम और रज से खेंच कर सत पर ले आवें, ईश्वर पर भरोसा रखे और संतों का संग करे तो आसानी से भवसागर से पार हो जाता है. जो लोग यह सोचकर बैठ जाते हैं कि ईश्वर कृपा करेगा तो सब ठीक हो जायेगा और वे भवसागर से पार हो जायेंगे, उनका यह सोचना भूल और आलस्य है. ईश्वर उनकी सहायता करता है जो स्वयँ पुरुषार्थ करते हैं और उसकी ओर चलते हैं. ख़ाली सोच लेने से और हाथ पर हाथ रख कर बैठ जाने से कुछ नहीं होगा. तम और रज से निकलना अपना कर्त्तव्य है

और सत से ऊपर उठा कर ईश्वर में मिला देना, यह ईश्वर करता है. जब तक तम और रज में रहता है ईश्वर कृपा नहीं होती. सतोगुणी मन तक तो खुद कोशिश करके आना पड़ेगा . उसके बाद गुरु-कृपा और ईश्वर -कृपा होगी.

ईश्वर कृपा बहुत नाज़ुक़ है. यह विरोध (opposition) बरदाश्त नहीँ करती. ज़रा सा विरोध होने पर अन्दर को गुम हो जाती है. इसलिए जब तक मन इंद्रियों में फँसा रहता है, उसमें ख्वाहिशें (इच्छायें, वासनायें) रहती हैं और वह तरंगे उठाता रहता है, उस वक्त तक ईश्वर कृपा गुप्त रहती है. जब मन शान्त होकर सत पर आ जाता है तभी ईश्वर कृपा काम करती है और काम करती मालूम होतीं है. इसके पहले ईश्वर कृपा नहीं होती.

यह काम रुपये से नहीं होता. हाँ , गुरु उससे ख़र्च कराता है, खैरात कराता है. अच्छे कामों में रुपया लगवाता है जिससे रुपए से मोह टूटे. किन्तु यदि यह ख़्याल मौज़ूद है कि मैं खैरात कर रहा हूं तो फिर दुनिया में आना पड़ेगा क्योंकि इस मृत्युलोक में हर चीज़ का बदला है. इससे अच्छा यह है कि खैरात करो और कुछ न चाहो. सन्त लोग रुपया लेकर अपने इस्तेमाल में नहीं लाते, वे उसे खैरात कर देते हैं या किसी नेक काम में लगा देते हैं. यह उनकी बड़ी कृपा और बड़ा उपकार है क्योंकि इससे बन्धन भी टूट जाता है और उसके फल की भावना भी उत्पन्न नहीं होती, बदला लेने नहीं आना पड़ता. कितना उपकार किया उन्होंने. जब तक आप धर्म के काम नहीं करेंगे, बुराई को छोड़ कर नेकी पर नहीं आयेंगे, तम और रज से ऊपर उठ कर सत पर नहीं आवेंगे, तब तक गुरु कृपा नहीं होगी. जब तक आप सात्त्विक वृत्ति पर नहीं आवेंगे और धर्म पर नहीं चलेंगे, तब तक गुरु के प्यारे नहीं बनेंगें. गुरु के प्यारे हो जाने पर सतगुरु आपको नीचे से उठाकर आत्मा का अनुभव करा देंगे. ऐसा कहना ' कुफ्र का कलमा ' है लेकिन क्या करें, ईश्वर ने यहीं नियम बनाया है. हम अपना हाल सुनायें. बचपन में हमें कृष्ण भगवान से बड़ी मोहब्बत थी और उनकी याद में हम रोया करते थे. भगवान कृपा करके हमें स्वप्न में दर्शन दिया करते थे, भविष्य में होने वाली बातें बता दिया करते थे और एकाध बार उन्होंने इम्तिहान के सवाल भी बताये. जब से गुरुदेव की शरण में आये तब से सब ग़ायब हो गया, न दर्शन होते थे और न भविष्य की बातें मालुम होती थीं. हमने सोचा कि अपनी स्थिति से गिर गये. लेकिन नहीं, कृष्ण भगवान की ही कृपा से सन्त से मेला हुआ, सदगुरु मिले और उनकी कृपा हुई तो उन्होंने उठाकर भगवान से मिला दिया. रामायण में आया है :

" सातवँ सुम मोहि मय जग देखा , मोते सन्त अधिक कर लेखा .

राम सिंधु धन सज्जन धीरा, चन्दन तरु हरि संत समीरा,

सब कर फल हरि भगति सुहाई, सो बिनु सन्त न काहू पाई ."

अच्छे और बुरे ख़्याल पिछले संस्कारों के कारण आते हैं. जब बुरे ख़्यालों का वेग होता है तब हम दुनियाँ की तरफ़ भागने लगते हैं और जब सदविचार उदय होते हैं तब हम ईश्वर की तरफ़ चलने लगते हैं. मनुष्य अपने पुरुषार्थ से सात्त्विक अवस्था में भले ही पहुँच जाय मगर सात्विक अवस्था से ऊपर आत्मा के स्थान पर बिना सन्त की कृपा के नहीं पहुँच सकता. अगर संतों के सतसंग से अपना सच्चा कल्याण चाहते हो तो पहले तम और रज से निकल कर सत पर आओ. तब सन्त कृपा करेंगे और उसके साथ ही साथ ईश्वर कृपा होगी.

जब कोई सन्त यह देखता है कि उसके जाने का समय आ गया है और उसके शिष्यों में से कोई अभी इस योग्य नहीं हुआ है जो उसके मिशन को आगे चलाये तब वह अपने परम प्रिय शिष्य को अपनी शक्ति से ऊपर खैँच कर आत्मा के दर्शन करा देता है. लेकिन जब तक शिष्य का मन पूरी तरह सत पर नहीं आ जाता तब तक उसकी स्थिति आत्मा में स्थायी (permanent) तौर पर नहीं हो पाती, वह नीचे गिर जाता है . लेकिन यह नहीं होता कि वह नीचे ही गिरा रहे. उस आत्म दर्शन की याद, उसका प्रेम और उसका आकर्षण, उसे नीचे नहीं रहने देता. धीरे -धीरे अभ्यास करके वह ऊँचा उठता जाता है, और एक दिन ऐसा आता है जब उसकी स्थिति आत्मा में स्थायी तौर पर हो जाती है.

जो होना है, वह तो होना ही है. उसे आप रोक नहीं सकते और न उसको रोकना आपके बश की बात है. इसी को तक़दीर कहते हैं. लेकिन उसके प्रभाव से बचना आपके हाथ में है. आगे के लिए तक़दीर का बनाना, आपके हाथ में है और इसके लिए जो यत्न किये जाते हैं उसी को तदबीर कहते हैं. अगर हज़ार कोशिश करने पर भी, और आपके हरचन्द रोकने पर भी, भोग के ख़्याल आने से नहीं रुकते तो समझ लीजिये कि पिछला संस्कार हैँ. अगर मज़बूरी में भोगना पड़े तो भोगते समय उसके ख़्याल से ऊँचे उठ जाओ, अपनी सुरत (attention) को मालिक के चरणों में लगा दो. इसका नतीज़ा यह होगा कि उस भोग में आनन्द नहीं आयेगा और अगर आयेगा भी तो किसी क़दर कम. इस तरह अभ्यास करते -करते उस भोग से मन उपराम हो जायेगा और एक दिन ऐसा आयेगा कि उस भोग का ख़्याल भी नहीं उठेगा .

जो ईश्वर सत -चित -आनन्द है वही आत्मा है. अन्तर केवल इतना है कि आत्मा के साथ मन की गाँठ बंधी हुई है. मन से न्यारी हो जाय फिर तो वह ईश्वर ही है. गंगा का जल जब समुद्र में मिल जाता है तो फिर वह गंगाजल कहां रहा, वह तो समुद्र हो गया. जो शक्ति ईश्वर में है, वही शक्ति आत्मा में है. समुद्र में जब ज्वार आता है तब वह गंगा में घुस आता है. तब वह गंगा नहीं समुद्र है. सन्त लोग ईश्वर चोले में ईश्वर से भरपूर होते

है . जो कुछ वे कहते हैं वह ईश्वरीय वाक्य होता है. उनके मन में ग्रंथि नहीं होती . इसीलिये कहा है -- " सन्त वचन पलटे नहीं, पलट जाय ब्रह्मांड."

जो व्यक्ति राजसी वृत्ति के हैं, जिनका मन अभी चंचल अवस्था में है, कभी सत पर आ जाता है, कभी तम पर चला जाता है, उन्हें सन्तजन आन्तरिक अभ्यास हृदय के स्थान से आरम्भ कराते हैं. जब हृदय शान्त होगा, चंचलता दूर हो जायेगी तब ऊपर को चढ़ाई करेगा. अगर उसे आज्ञा चक्र से शुरु कराया जाय तो रज के ख़यालात नीचे को खींचेंगे. अगर अभ्यास ऊँचे स्थान से करेगा तो कशमकश (संघर्ष) ज़्यादा रहेगी. तरक्क़ी ज़ल्द नहीं होगी, हालत से गिर जायगा. जो व्यक्ति सात्त्विक वृत्ति के , गम्भीर और शान्त तबियत के हैं उन्हें आन्तरिक अभ्यास आज्ञा -चक्र से शुरु कराते हैं .

¤¤¤¤¤¤¤¤¤¤¤¤¤¤¤¤¤¤¤¤¤¤¤¤¤¤¤¤¤¤

प्रवचन बक्सर १९-१-१९६९.

इन्सानी ज़िन्दगी का आदर्श

इन्सानी ज़िन्दगी का आदर्श यह है कि अपने आपको पहचाने कि मैं क्या हूँ. ईश्वर को पहचाने और उसमें अपनी हस्ती लय कर दे. जो इस आदर्श का रास्ता दिखलाये वही सच्चा आध्यात्म है. जिसने इस आदर्श की प्राप्ति कर ली है वही सच्चा गुरु है. जो इस आदर्श की प्राप्ति करना चाहता है वही सच्चा भक्त है. जब ऐसा शिष्य हो और ऐसा गुरु हो तभी सच्चे लक्ष्य की प्राप्ति मुमकिन है. दुनियाँ की किसी भी चीज़ की ख्वाहिश रखने वाला, चाहे वो कितनी भी अनमोल क्यों न हो, भक्त नहीं है. गुरु में कितनी ही विद्या क्यों न हो, कितना ही ज्ञान क्यों न हो, कितनी ही शक्ति क्यों न हो, अगर उसने अपने आप को ईश्वर को समर्पण नहीं किया है और ख़ुदी (अहंपना) बाकी है तो वह सच्चा गुरु नहीं है, ऐसा अधिकारी शिष्य हो और ऐसा पूर्ण गुरु मिल जाये, तभी ईश्वर के दर्शन होते हैं. लेकिन शर्त यह है कि शिष्य पूर्ण श्रद्धा के साथ गुरु के बताये हुए रास्ते पर चले और दुनियाँ की बड़ी से बड़ी चीज़ को त्यागने में न हिचकिचाए, बल्कि ख़ुशी से त्याग दे. ऐसा संयोग होने से सफलता प्राप्ति होती है और आदमी क़ामयाब होता है. जितनी देर ऐसी हालत हासिल करने में लगती है उतनी ही देर लक्ष्य प्राप्ति में होती है.

दूसरे, इस रास्ते में हिम्मत की बड़ी ज़रुरत होती है. कभी घबराएं नहीं. बराबर दुनियाँ से लड़ता रहे. दुनियाँ से लड़ना यह है कि दुनियाँ की ख्वाहिशात और धोखे से अपने को अलहदा रखे. परमार्थ और दुनियाँ का हमेशा से बैर रहा है. बिना दुनियाँ को फ़तह किये परमार्थ नहीं मिलता. इसलिए बराबर दुनियाँ से लड़ता रहे और ईश्वर की कृपा और अपनी कामयाबी का पूरा यक़ीन रखे. कोशिश करने पर भी जब कामयाबी नहीं होती तो यह उसका इम्तिहान है. इम्तिहान यह है कि देखा जाता है कि उसमें कितनी हिम्मत है, उसे अपने लक्ष्य से कितना प्यार है और उसके लिए वह कितनी क़ुर्बानी कर सकता है.

जितनी दुनियाँ की तक़लीफ़ें होती हैं और जितनी रुकावटें आती हैं और तुमसे दुनियाँ की चीज़ें छीनी जाती हैं, ये सब इम्तिहान हैं, तीसरे अगर ईश्वर से भी प्यार है और दुनियाँ से भी प्यार है तो तरक़्क़ी नहीं होती, वहीँ का वहीँ रहता है. इसलिए ईश्वर के प्यार के साथ दुनियाँ के साथ तर्क (त्याग) भी ज़रूरी है. गुरुजन, ईश्वर प्रेम और दया के सागर हैं. वे हर समय प्यार करते हैं. लेकिन हमें उसका अनुभव उसी वक्त होता है जब भक्त कोशिश करके अपने हृदय को दुनियाँ की ख्वाहिशात और नफ़रत से शुद्ध कर लेता है, इससे पहले नहीं. इसलिए घबराना नहीं चाहिए. बुद्धि, मन और इन्द्रियों का हर समय शोधन करते रहना चाहिए, यानी :-

1) हर समय ख्याल रखो कि ईश्वर तुम्हारे साथ है और वह तुम्हारा सच्चा बाप है. प्यार से उसका पवित्र नाम लेते रहो.

2) जिस हालत में भी उसने तुम्हें रखा है, चाहे वो अच्छी है या बुरी, उसमें खुश रहो. दुःख और सुख की दुनियाँ से ऊपर उठो. जब तक ज़िंदगी है, दुःख और सुख तो आते ही रहेंगे. उनका आना ज़रूरी है, लेकिन अपने मन को उससे ऊंचा उठाओ और जो ख़िदमत या फ़र्ज़ ईश्वर ने तुमको सुपुर्द किया है उसे ईमानदारी और सच्चे दिल से पूरा करो. हर समय ख्याल रखो कि यह दुनियाँ ईश्वर की है. हम सब ईश्वर के हैं. जो काम हो रहा है और हम कर रहे हैं, ईश्वर के लिए कर रहे हैं. हम वहीँ से आये हैं, उसी की दुनियाँ में रह रहे हैं,और हमें वहीँ जाना है.

3) अपने ख्यालों को हमेशा शुद्ध करते जाओ. ख्यालों पर क़ाबू पाने की कोशिश करो. अपनी बुद्धि को दुनियांवी ख्यालों से हटाकर सन्तोंकी वाणी, शास्त्रों के उपदेश और परमात्मा के प्रेम में लगाओ. इन्द्रियों का आचार ठीक करो. कोशिश करो कि इन्द्रियाँ दुनियांवी ग़िलाजत देखने के बजाय हर जगह ईश्वर को देखें. यही रहनी-सहनी का ठीक करना है.

4) जब-जब मौका मिले सन्तों, गुरुजनों की सेवा करो, उनको खुश करो, उनका सत्संग करो, उनके उपदेशों को हित- चित से सुनो और उन पर अमल करने की कोशिश करो. हमेशा पूरी कामयाबी होगी. कभी निराशा नहीं होगी.

यही सच्चा, सीधा और सहज रास्ता ईश्वर को प्राप्त करने का है.

ईश्वर के नाम का जाप ईश्वर तक पहुँचाता है - सन्तों की कृपा

साधारण मनुष्य के लिए जो दुनियाँ में फंसा हुआ है, ईश्वर तक पहुँचने के लिए सबसे सरल उपाय यही है कि ईश्वर के नाम का उच्चारण बराबर किया जाए. उसके नाम का उच्चारण करने से वह नाम उसे उस ईश्वर से मिला देता है जो उसके दिल में रहता है. जितना ही वह इस पवित्र नाम का उच्चारण करता जायेगा उतना ही वह अपने अन्दर उस परमात्मा के नज़दीक पहुँचता जाएगा. अपने अन्दर से बुराइयों को निकालने और आनन्द और ईश्वर को प्राप्त करने का इससे आसान तरीक़ा और कोई नहीं है. नाम के उच्चारण से केवल मन ही शुद्ध नहीं होता बल्कि नाम भक्त को अपने भगवान से मिला देता है.

नाम की बरक़त जो मैं आपको सुना रहा हूँ, यह मेरा अपना ही तज़ुर्बा नहीं है बल्कि दुनियाँ के सभी सन्तों का यही तज़ुर्बा है. इसलिए मेरी आपसे यही गुज़ारिश है कि ईश्वर की सच्ची भक्ति करो, उसमें सच्चा विश्वास लाओ और उसका पवित्र नाम बराबर लेते रहो. इससे तुमको उसके दर्शन तुम्हारे अपने दिल में होंगे और तब सारे जगत में ही उस ईश्वर के दर्शन तुम्हें होंगे. ईश्वर का जो भी नाम तुम्हें प्यारा लगता हो उसे लेने में कोई दिक्क़त नहीं उसमें कुछ खर्च नहीं होता. इसके लिए न कोई खास बैठने का तरीक़ा है और न किसी और चीज़ की ज़रूरत है. तुम ईश्वर का नाम हर जगह, हर समय ले सकते हो. जब तुम हाथ-पाँव से काम कर रहे हो, तब उसका नाम ले सकते हो, जब तुम कहीं जा रहे हो - चाहें गाडी में, चाहे पैदल- तुम बड़ी आज़ादी से उसका नाम ले सकते हो. इस अभ्यास के कुछ दिनों बाद ख़ुद-ब-ख़ुद ही तुमको अपने अन्दर 'शब्द' सुनाई देगा. तुम्हारे अन्दर ईश्वर का प्यार ख़ुद-ब -ख़ुद ही पैदा हो जायेगा. आज़मा करके देखो तो सही.

सन्तों की कृपा

ईश्वर के लिए यह खिचाव, प्यार और भक्ति सिर्फ सन्तों की कृपा से मिल सकती है. यह उन्ही की कृपा होती है कि हमारे दिलों में ईश्वर का विश्वास आता है और उस ईश्वर का नाम लेने की कामना पैदा होती है. सन्त हमारे दुनियावी माँ-बाप से जो हमारे जिस्म और दुनियाँ की ही देख-रेख करते हैं, ज़्यादा कृपालु और मेहरबान होते हैं, क्योकि वह हमेशा यह चाहते हैं कि हम दुनियाँ के कर्म और बन्धनों से हमेशा के लिए छूट जाएँ. उनकी ज़िंदगी का ख़ास ध्येय यही होता है कि वे सोई हुई आत्माओं को जगाएं, उनके ऊपर से अज्ञानता का पर्दा हटाएँ, उनको ईश्वर की तरफ़इ जाएँ और उनकी दुःख की ज़िन्दगी को शांति की ज़िन्दगी बना दें.

इसलिए हमको चाहिये कि हम सन्तो की कृपा हासिल करें. परमात्मा का नाम बराबर लेते रहें, अपनी ज़िन्दगी को पवित्र बनायें और आख़िर में ईश्वर को अपने दिल में अनुभव करें और फिर तमाम दुनियाँ में होता हुआ उसी का खेल देखें. जब हम ईश्वर को हर जगह देख पाएंगे तभी हमारी ज़िन्दगी ख़ुशी और आनन्द की ज़िन्दगी होगी. अगर हमने यह कैफ़ियत (मनोदशा) हासिल कर ली तो हमने अपनी ज़िन्दगी सफल कर ली.

इसलिए मैं फिर आपको नसीहत करता हूँ कि सन्तों की सौहबत में जाओ. उनकी कृपा हासिल करो जिससे तुम्हें परमत्मा का प्रेम मिलेगा. परमात्मा का ध्यान बराबर बना रहेगा और तुम्हारा मन शुद्ध होगा तथा ईश्वर का प्रेम तुमको अपने अन्दर अनुभव होगा जिससे तुम हमेशा - हमेशा के लिए जन्म-मरण के चक्कर से छूट जाओगे और हमेशा का आनन्द प्राप्त कर सकोगे.

गुरुदेव तुम्हारा कल्याण करें .

राम सन्देश - दिसम्बर १९९४

गुरु का काम सेवा और सहारा देना है

सच्चाई यह है कि गुरु के मुताबिक चलोगे तो सहायता ज़रूर मिलेगी. अगर तुमने इन बातों को माना कि खिदमत करना हमारा फ़र्ज़ है, तो हर वक़्त ध्यान रहे कि हम 'गुरु' नहीं हैं. अगर मन ज़रा भी तंग करे तो ठोकर मार कर उसे नीचे पटक दो, और ऐसी जगह बैठो जहाँ यह ख्याल न हो कि में ऊँची जगह बैठा हूँ, गुरु हो गया हूँ. नीची जगह जाकर बैठ जाओ. पैर छुआने में अगर तुमको गरूर (अभिमान) आने लगा है तो कभी किसी से पैर मत छुआओ. जिस चीज़ से ज़रा भी गरूर हो उसे तोड़ कर फेंक दो. हमारे यहाँ का तरीक़ा तो खिदमत (सेवा) का है. अपनी जान फ़िदा (न्योछावर) कर दो गुरु पर .जब तक ये दोनों बातें यानी प्रेम और सेवा रहेंगी, आपका तरीक़ा चलेगा. प्रेम करो, सेवा करो.

दूसरी बात जो मैं अर्ज़ कर रहा हूँ, इसकी गवाह है रामायण और श्रीमद भगवत गीता. आप देखिये, ऋषि व्यास जी फरमाते हैं कि परमात्मा सबसे ज़्यादा उसको प्यार करता है जो उसके (परमात्मा के) नाम को फैलाता है. इस नाम के लिए ही भगवन कृष्ण फरमाते हैं कि प्राणियों में सबसे ज़्यादा प्यारा मुझको वह है जो मेरा नाम जपता है और दूसरों का भला करता है. तो गुरु जब किसी से मोहब्बत करता है तो उसकी जाँनिसारी (जी जान से न्योछावर होने) का बदला देना चाहता है तो ऐसे शिष्य को अपना प्रेम देता है. गुरु जिससे (ईश्वर से) प्रेम करता तो जो उससे प्रेम करने लगता हैं, उसमें भी परमात्मा का प्रेम आ जाता है और आहिस्ता-आहिस्ता वह चमक उठता है.

शुरू के अन्दर गुरु का प्रेम नाज़राता है, मगर थोड़े दिनों के बाद नज़र आएगा कि गुरु का प्रेम नहीं रहता और गुरु की जगह परमात्मा ले लेता है. गुरु का ख्याल भी नहीं आता. गुरु का ख्याल तो ऐसे नज़र आता है जैसे कि शादी होने के बाद एक बेटी को अपने बाप का ख्याल आता है. रिश्ता तो उसका अब अपने पति से होता है लेकिन मुसीबत के वक्त कभी-कभी वह अपने बाप को याद कर लेती है. इसी तरह से अभ्यासी का गुरु पिता समान और पति परमात्मा होता है. गुरु वास्तेदार (माध्यम) बीच में है. पाल-पोसकर बड़ा कर देता है और जब स्त्री (शिष्य) की जवानी (पूर्णता) का वक्त आता है तो पति (परमात्मा) के हवाले कर देता है और खुद पीछे हट जाता है. अब अभ्यासी साधक का लक्ष्य उसका पति परमात्मा है.

इसी तरह से गुरु उम्र भर सेवा करके उसको (शिष्य को) तैयार करता है और जब देखता है कि जवानी के आसार (लक्षण) आ गए यानी जब शिष्य में परमात्मा का प्रेम झलकने लगता है, तब वो उसके (परमात्मा के

) सामने कर देता है, खुद पीछे आ जाता है. यह बात बिलकुल साफ़ है कि गुरु परमात्मा के बीच में कभी नहीं आएगा. असली गुरु तो परमात्मा है, देहधारी गुरु तो एक ज़रिया (माध्यम) था. हाँ, वह (गुरु) उम्र भर देख-भाल तो रखता है और मदद करता रहता है.

तन का सुख, इन्द्रिय सुख, मन का सुख और बुध्दि का सुख - सबको समता में लाकर इष्ट के अर्पण कर दें, अपने आप को पूर्ण रूप से परमात्मा के हवाले कर दें. इसके बाद कुछ करना-धरना नहीं रहता. इसके लिए गुरु कि सेवा और गुरु का सहारा ही उसे निकाल ले जाएगा.

गुरुदेव तुम्हारा कल्याण करें.

गुरु का प्रेम पाने के लिए शिष्य क्या करे ?

जब मनुष्य दुनियाँ की परेशानियों से तंग आकर ईश्वर के दरबार में प्रार्थना करता हैं और इन साँसारिक झगडों से निकलना चाहता है और अगर उसकी दुआ सच्चे और शुद्ध हृदय से होती है तो उसकी पहुँच ईश्वर तक हो जाती है. मालिक की मोहब्बत जोश में आती है और इसका असर उन लोगों के दिलों पर पड़ता है जो अपने दिल की इच्छाओं को मेंट कर उससे लौ लगाए बैठे हैं और इस काम के लिए मुक्क़र्रिर होते हैं. वे ऐसे शख़्स के पास पहुँच जाते हैं और उससे प्रेम करने लगते हैं. जितना वे अपने आप को उसमें लीन करते हैं उतनी ही मुहब्बत इच्छुक को उनसे बढ़ती जाती है यानी जितनी मौहब्बत गुरु को शिष्य से होती है उतना ही ज़्यादा असर शिष्य के दिल पर पड़ता है जिसके प्रभाव से वह गुरु प्रेम में मस्त हो जाता है. एक मुराद होता है (जिसको गुरु स्वयँ प्यार करे) और दूसरा फ़िदायी है (जो गुरु को प्रेम करे, उस पर न्यौछावर हो). आगे मुराद और मुरीद दोंनों मिलकर एक हो जाते हैं. यह आपके सिलसिले (वंश) की बरकत है. इस सिलसिले की निस्बत (आत्मिक सम्बन्ध) माशूक़ाना है. इसमें पहले मुरशिद को प्रेम पैदा होता है और फिर मुरीद को. फिर बाद में दोनों मिलकर एक हो जाते हैं. यही असली तालीम है, यही प्रेम मार्ग है. जितना उसमें कमी रहती है उतनी ही कमी तालिब में रह जाती है. अगर दोनों मिलकर एक हो जायें तो सिर्फ नाम के लिए फ़र्क़ रह जाता है -इसी को निस्बत की मज़बूती कहते हैं. यही सच्चा प्रेम मार्ग है. यह बहुत सीधा मगर नाज़ुक रास्ता है. इसमें अपनी हस्ती बिलकुल मिटा दी जाती है और यह हालत हो जाती है जैसे मुर्दा ज़िन्दे के हाथ में होता है. सिर्फ अन्तर यह है कि मुरदे के सामने कोई लक्ष्य नहीं रहता और ऐसे मुरीद (शिष्य) के सामने अपने इष्ट का लक्ष्य होता है. मुरीद के असली मायने मुर्दा के हैं. ऐसी हालत के पैदा करने के लिए बराबर कोशिश करते रहना चाहिये. अगर वगैर ख़्याल किए खुद- ब - खुद ऐसी हालत होने लगे कि तबियत एक सी रहे, आनन्द आता रहे, दुनियाँ के अन्दर बरतते हुए ऊपर उठते हुए मालुम देवें, प्रेम और मस्ती की हालत पैदा हो जाये और दिल में बराबर दर्द उठे तो समझना चाहिये कि वह मुरीद नहीं बल्कि मुराद बन गया है. " दिल को आज़ारे मोहब्बत के मज़े आने लगे, उसके मैं क़ुर्बान जिसने दर्द पैदा कर दिया. "

मुरीद उस वक्त रहता है जब तक परमात्मा के दरबार में सुनवाई नहीं हुई थीं. अब उसकी सुनवाई हो गई, उसकी दुआ क़बूल हो ग . वह क़बूल कर लिया गया और अब वह मुराद है. ऐसी हालत में उसको चाहिये कि वह अपने आप को सराहे. कोशिश करो कि ऐसी दशा ज़्यादा से ज़्यादा रहे और स्थायी हो जाये. ऐसा कोई काम न करो कि जिससे यह हालत जाती रहे. इसके दो उपाय हैं - अपनी सब ख़्वाहिशों को एक ख़्वाहिश में

लगा दो, यानी सिर्फ एक इच्छा रखो और अपना इख़्लाक़ (रहनी -सहनी या आचरण) बेहतर बनाने की कोशिश में रहो. जितनी इच्छायें मिटती जायेंगी उसी क़दर मज़बूती निस्बत में आयेंगी और अपनी हस्ती गुम होकर उसी में समा जायेगी जो सबका आधार है. यही मोक्ष, निर्वाण पद, इत्यादि नामों से पुकारा जाता है. इसी को सूफ़ियों और संतों की भाषा में राज़ी -ब -रज़ा कहते हैं. यानी हर हालत में, चाहें कैसी भी हालत क्यों न हो, खुश रहना चाहिये. यहाँ पर बुराई - भलाई से निज़ात मिल जाती है. आगे भविष्य के लिए सँस्कार मिट जाते हैं. कोई इच्छा शेष नहीं रह जाती है. यहाँ तक कि आख़िर में परमात्मा से भी बेनियाज़ हो जाता है. यही गीता का चौथा पद है - " तर्के दुनियाँ, तर्के उक़्बा, तर्के मौला, तर्के तर्क . "

परमात्मा आप पर अपना फ़ज़्ल (कृपा) करें और बतुफैल पीराने उज़्ज़ाम (वंश के महापुरुषों की कृपा से)अपनी इनायत और करम फरमायें. जब जब आदमी किसी से प्रेम करता है तो वह उसकी मोह्ब्बत हर वक्त चाहता है. हर समय चाहता है कि उसके पास बैठे और देखता रहे. फिर धीरे - धीरे उसकी शक़्ल अपने हृदय में रख लेता है और उसी को देखता रहता है. जिस्मानियत से आगे बढ़ता है. प्रीतम की आदतें उसमें आ जायें और जिस्मानियत और इख़्लाक़ियत (प्रकट रूप और व्यबहार) से वही बन जाये और उसी ज़ज़्बे में पुकार उठे –

" मन तो शुदम तो मन शुदी, मन तन शुदम तो जौ शुदी.
ता कस न गोयद बाद अज़ी, मन दीगरम तो दी गरी ."

यानी - " मैं तू हो जाऊँ, तू मैं हो जा, मैं जिस्म बन जाऊँ और तू मेरी जान बन जाये ताकि फिर कोई यह न कह सके कि तू और है और मैं और हूँ". कभी -कभी शरीर भी एक सी शक़्ल इख़्तियार (धारण) कर लेता है. इसके बाद इख़्लाक़ (आचरण) में तब्दीली शुरु होती है. ज़िस्म की शक़्ल अब ख़्याल में नहीं आती बल्कि एक इख़लाक़ी शक़्ल सामने रहती है. पहले इंद्रिय आनन्द का मज़ा था, अब मानसिक आनन्द ह . मानसिक आनन्द कहीं अधिक, कहीं ज़्यादा लतीफ (अधिक सूक्ष्म) और देरपा (देर तक रहने वाला) और ख़ास ख़सूसियत(विशेषता) रखता है. इसी हालत को मजजूबियत या अवधूत गति कहते हैं. इसमें अजीब आनन्द होता है जिसके लिए इन्सान सब कुछ न्यौछावर करने को तैयार रहता है. जब इख़्लाक़ मुक्कमिल (सम्पूर्ण) हो जाता है, यांनी दोनों की वासनायें एक हो जाती हैं, तो क़दम और आगे को बढ़ता है. आत्मा की नज़दीकी हासिल होनी शुरु हो जाती है. गुरु का ख़्याल ग़ायब हो जाता है, सिर्फ एक ख़्याल क़ायम रहता है. अजीब मस्ती सी छाई रहती है जो अपनी मिसाल नहीं रखती और दायमी (स्थायी) होती है. और फिर वह मुबारिक दिन आ जाता है जब उसे अपनी आत्मा का साक्षात्कार हो जाता है और वह निहाल हो जाता है. जिसने इसका अनुभव कर लिया है

उसकी तमाम इच्छायें ख़त्म हो गईं. अब न कुछ जानने को रह जाता है, न हासिल करने को. यह हालत कश्फी भी गुज़रती है और कस्बी भी. अब प्राण, मन, बुद्धि और आत्मा का ग़िलाफ़ आत्मा पर से उतर जाता है और आत्मा अपनी असली हालत में ज़ाहिर हो जाती है. इसका ज़बान से वर्णन नहीं हो सकता बल्कि शुद्ध बुद्धि ही उसका अनुभव कर सकती है. इस बयान से आपको तस्सली हो गई होगी और समझ में आ गया होगा कि इस प्रेम की इब्तदा (आरम्भ) और इन्तहा (अन्त) कहाँ तक है.

बढ़े चलो. एक ख़्याल सामने रखो. और सब ओर से आँखें मीच लो. अपनी हस्ती ख़त्म कर दो, कोई इच्छा बाक़ी न रह जाये सिवाय एक ख़्वाहिश के - उसके आगे परमात्मा को भी भुला दो, सिर्फ़ वही रह जाये. एक सन्त ने अपने मुरीद से पूछा - " तू मुझे क्या समझता है ? उसने उत्तर दिया - बराय खुदास्त (ख़ुदा की जगह . फ़रमाया - " कुफ्र अस्त (यह पाप है) . बराय ख़ुदा न भी दानम (मुझे ख़ुदा क्यों नहीं समझता), गुरु को ख़ुदा की जगह समझना शिर्क (नास्तिकता) है. सबको मिला कर एक कर लो और उसी में अपने आप को लय करो और आख़िर को वह भी छोड़ दो. जो असल है वही शेष रहेगा, बाक़ी सब ग़ायब हो जायेंगे. परमात्मा ने तुम्हें पैदा करके अपने आपको पोशीदा (अव्यक्त) और तुमको ज़ाहिर (प्रकट) कर दो. बस .

राम संदेश : जून ,१९९५.

चाह और दीनता

मनुष्य यह नहीं जानता कि वास्तव में वह चाहता क्या है और प्रभु से माँगता क्या है ? उसके अंतर में अनेक प्रकार की चाहें उठतीं रहती हैं और वह उन्हीं के अनुसार व्यवहार करता है. किसी वस्तु या स्थान के विषय में कुछ सुना तो उसे प्राप्त करने की या देखने की इच्छा प्रबल हो उठती है. कहीं यह सुन लिया कि मालिक दर्शन करने योग्य हैं, उनके दर्शन अवश्य करने चाहिये, तो वैसी चाह उठने लगी. यदि यह चाह प्रबल हुई तो ऐसा प्रतीत होता है कि वह अब और वस्तु नहीं चाहता, केवल मालिक के दर्शन करने हैं. किन्तु यह चाह क्षणिक होती है. उसे यह मालुम नहीं कि उसके अन्दर अनगिनत दूसरी चाहों के अम्बार लगे हुए हैं और जिस समय उन चाहों में से किसी एक या एक से अधिक ने उग्र रूप धारण किया और सँसार के भोग-रसों का झोंका आया तो मालिक के दर्शनों की चाह का पता भी न रहेगा कि किधर विलीन हो गई. हमारा अंतःकरण मलीन है. पर्दे पर पर्दे पड़े हैं. हर पर्दे से चाहें उठती हैं और जितनी नीचे से चाह उठेगी, ऊपर वाली चाह को दबा लेगी. यदि मालिक से मिलने की चाह अंतःकरण (ब्रह्माण्डी मन या सतोगुणी मन) के भीतरी पर्दे से होती तो वह अन्य चाहों के उठने पर इस तरह विलीन नही हो जाती. वह चाह तो अंतःकरण के बाहरी पर्दे (पिंडी मन या रजोगुणी मन) से उठी थी, इसलिए जल्दी विलीन हो गई .

सत्संगियों की भी न्यूनाधिक यही दशा होती है. जिस समय जो चाह जागृत होकर उभार लेती है उस समय उसी का वेग रहता है और उसी के अनुसार कर्म होने लगते हैं. जब तक कोई चाह प्रबलता से नहीं उभरती तब तक वह यह समझता है कि अब कोई संशय शेष नहीं रहा, सब बातें अच्छी तरह समझ ली, अब तो केवल एक ही चाह शेष है कि मालिक के दर्शन हो जाएँ. किँतु यह सोच -विचार बिलकुल ग़लत हैं क्योंकि जो चाहें मन में अभी गुप्त रूप से जमा हैं उनकी उसे अभी सुध भी नहीं है. मनुष्य जब भजन, ध्यान और ईश्वर का स्मरण करने बैठता है तो चाहों के हिजूम सामने आने लगते हैं. स्मरण, ध्यान व भजन जिसके लिए वह बैठा था, सब ग़ायब हो जाते हैं. यदि मालिक से मिलने और उसके दर्शन करने की चाह के सिवाय और कोई चाह अंतर में मौज़ूद नहीं थी तो यह सब चाहें कहाँ से आ गईं. बात वास्तव में यह है कि ये सब चाहें मन में पहले से ही जमा थीं और जमा हैं. अन्तर केवल इतना है कि जो मनुष्य संत सदगुरु की शरण में आए हैं और जिनको उन्होंने उपदेश दे दिया है उनके अंतःकरण मेँ ईश्वर से मिलने और उसके दर्शनों की चाह के बसने की जड़ जम गई हैं. उनके अंतर में वह चाह नीचे के पर्दों तक प्रवेश करती जाती है और सदा मौज़ूद रहती है चाहे देखने में उनका व्यवहार निपट संसारियों का सा क्यों न हो. चाहें जितने भी झकोले दुनिया के झंझटों के आवे वह चाह नष्ट

नहीं होंगी , बीज रूप में बनी अवश्य रहेगी . बहुत समय तक गुरु के सत्संग में रहने से जब वह चाह निज मन और सुरत में बस जावेगी तब कोई डर नहीं रहेगा, यह निश्चय हो जाएगा कि कभी वह चाह प्रबल रूप धारण करेगी और एक न एक दिन उसके प्रभाव से मालिक से मिलना हो सकेगा. किँतु यह कदापि नहीं भूलना चाहिए कि मालिक से मिलना या उनके दर्शन प्राप्त करना कोई दाल -भात नहीं है जो आसानी से खा लिया जाए. जब दुनिया और दीन की सब चाहों में आग लगा दी जायेगी, केवल एक चाह मालिक से मिलने की ही शेष रहेगी, और मनुष्य के सब व्यबहार, आँतरिक और बाहरी, उसी के अंतर्गत होंगे, सब पाप का नाश हो जायेगा, तब मालिक के दर्शन होंगे.

यह युग प्रेम और भक्ति का हैं जो बिना दीन बने नहीं आ सकती. यदि सच्ची चाह मालिक से मिलने की और उनके दर्शन प्राप्त करने की होगी तो सच्ची दीनता भी आवेगी और उससे परमार्थ की कार्यवाही सुगमता से बन पड़ेगी. यदि सच्चे गुरु की शरण प्राप्त कर ली है और उनके उपदेश का पालन करता है तो चाहे वह कहीं रहे उसका परमार्थ बनना शुरु हो गया है. जो बीज सतगुरु ने उसमें डाल दिया है वह नष्ट नहीं होगा. जब भी उससे सच्चे परमार्थ की कार्यवाही बनेगी वह बीज अंकुर बन कर फूटेगा और फूलेगा फलेगा. उसकी एक न एक दिन सब चाहें नाश हो जायेंगी. केवल एक ही प्रबल चाह रह जाएगी कि कब मालिक के दर्शन प्राप्त हों. सतगुरु के चरणों में प्रीति आना बड़े सौभाग्य की बात हैं. इसी के द्वारा सब मार्ग सुगम हो जाता है.

सच्चे मालिक की प्राप्ती की चाह या ऐसी चाहें जो उसके प्राप्त होने में सहायक हों, उनको छोड़ कर शेष सब चाहें निकृष्ट हैं और दुनिया में फसाने वाली हैं. संसारी चाहों के पूरा होने से परमार्थ की कार्यवाही नहीं बन सकती. यह भले ही हो जाए कि हर मृत्यु से कुछ कर्म कट जाएँ, कुछ कर्म -बोझ हल्का हो जाए और आगे चल कर जब इन सब से ऊब जाये तब मालिक से मिलने की सच्ची दीनता पैदा हो तथा सच्चे परमार्थ की करनी बने.

सच्ची दीनता यह है कि संसार से दुःखी होकर संसार को छोडना चाहे. जो इस सँसार से दुःखी है उसे यहां की कोई वस्तु नहीं सुहाती, किसी वस्तु में आवश्यकता से अधिक उसका ध्यान नहीं जाता. वह यहां इस तरह रहता है जैसे कोई परदेसी हो जो दूसरी जगह जाकर बेबस और लाचार हो जाता है और यही समझता है कि यह देश मेरा नहीं है. जिसका कोई हाल पूछने वाला नहीं और जैसे संसार तथा उसके पदार्थों से कोई लगाव नहीं है उसका पूछने वाला परमपिता परमेश्वर है. ऐसा मनुष्य सच्चा दीन और ग़रीब है. ग़रीब से मतलब यह है कि उसके पास किसी का बल और नहीं है. न तो वह संसार के किसी योग्य है और न ही वह परमार्थ की करनी ही भली प्रकार कर सकता है. ऐसे दीन पर मालिक ख़ूब दया करता है और उसके सब काम भली प्रकार बनते चलते

हैं. उसको सिवाय मालिक के किसी दूसरे का बल और सहारा नहीं है. जो मनुष्य ऐसा दीन होगा वह सतगुरु के वचन हितचित से सुनेगा और उन पर अमल करेगा. यह हुई उत्तम दीनता. इससे भी उत्तम अर्थात सर्वोत्तम दीनता होती है - वह है प्रेम रूप दीनता. प्रेम में वह आकर्षण होता है कि सुरत स्वयँ मालिक की ओर को खिचती है क्योंकि वह उसका अंश है. जब मनुष्य के सब आपे दूर हों, सिवाय परमात्मा के और किसी का भरोसा न हो तब प्रेम की अवस्था प्राप्त होतीं है और वही पूर्ण दीनता की अवस्था है. जब सच्चा और पूर्ण दीन बने तो दीनबंधु और दीनानाथ का पात्र बने. अतः दीनता को अपनाना चाहिए , पहले चाहे वह निकृष्ट श्रेणी की ही क्यों न हो. धीरे -धीरे वह उत्तम और अति उत्तम श्रेणी की भी हो जायेगी. इस काम में सतगुरु का सत्संग बहुत लाभदायक है. जब जब सतगुरु का संग मिले उसका लाभ उठाना चाहिए.

असली सत्संग यह है कि सतगुरु की वाणी को याद रखे और उनके आदेशों पर चलने का प्रयत्न करे. संत लोग ज़ाहिरदारी उपदेश बहुत कम करते हैं क्योंकि अभ्यासी इस कान सुनते हैँ और उस कान निकाल देते हैं. वे उपदेश उसी को करते हैं जो उसका पालन करने की कोशिश करते हैं अन्यथा वह मौन धारण कर लेते हैं. क्योंकि बात यदि स्पष्ट कही जाए तो जो व्यक्ति मनमत है और अपने मन के कहने पर चलता है वह उनके वचन सुनकर बिलकुल ही अलग हो जाएगा. जब तक वह अपने मन के मुताबिक़ व्यबहार कर रहा है तो मन की ओट में कुछ भक्ति भी कर रहा है. संभव है आगे चल कर सीधे रास्ते पर आ जाए, और यदि उसको कोई बात साफ -साफ कही जायेगी, तो जो वह कर रहा था उसको भी छोड़ देगा और जो कुछ लाभ हो रहा था उससे भी वंचित हो जाएगा. इसलिए संत लोग ऐसे अभ्यासिओं के साथ ख़ामोशी इख्तियार कर लेते हैं और इसी में उनकी भलाई है.

राम संदेश - दिसंबर , १९६७.

ज़िंदगी में रूहानियत लाओ - (जीवन में आध्यत्मिकता लाओ)

सभी जीव जंतुओं की दुहरी ज़िंदगी है. दुनियावी ज़िन्दगी ऊपरी है और रूहानी ज़िन्दगी नीचे दबी हुई है. भौतिक जीवन अस्थाई है और नकली है. असली ज़िंदगी तो रूहानी है जो हमेशा रहने वाली है. दुनिया ने उसे ढक रखा है. जब तक दुनिया का तज़ुर्बा न होगा, यहाँ की वस्तुओं और सुख की नाशवानता का पता नहीं लग जाएगा, तब तक रूहानी ज़िंदगी की तरफ नहीं मुड़ेगा. अँधेरे से उजाले में कैसे आएगा. बुराई छोड़ कर भलाई की तरफ कैसे बढ़ेगा?

हमारी आत्मा जो दयाल देश से निकाली गयी और इस कालदेश यानी इस दुनियां में भेजी गयी उसकी वजह यही थी कि हमारे अन्दर ख्वाहिशात (कामनाएं-वासनाएं) भरी पड़ी थी. इसलिए परमात्मा ने दया करके हमें यहाँ भेजा. जब पैदा हुए और आँख खुली तो सबसे पहले माँ-बाप को देखा, भाई-बहिनों को देखा, फिर दुनिया क़ी और चीज़ों को देखा और उनसे मोह हो गया. आये थे निकलने लेकिन उल्टे उलझने लगे.

दुनिया के सब काम करते-करते जीव सब बातों का कर्ता अपने आप को समझने लगता है लेकिन जब उसे होश आता है और दुनिया की बातों का तज़ुर्बा होता है तब वह देखता है कि जितने काम मैं कर रहा हूँ वह रहने वाले नहीं है. उनसे हासिल ख़ुशी रहती नहीं है, जाती रहती है. शादी ब्याह किया तो ख़ुशी मिली, लेकिन शादी के बाद जब बाल-बच्चेदारी और गृहस्थी क़ी दुःख-मुसीबतें सामने आती हैं तो वह ख़ुशी जाती रहती है. संतान पैदा हुई तो ख़ुशी हुई लेकिन उसके मर जाने या अलहदा हो जाने पर क्या वही ख़ुशी क़ायम रहेगी? रुपया पैदा करते हैं और उसे जोड़-जोड़ कर खुश होते हैं, क्या वह क़ायम रहेगा. अलहदा तो ज़रूर होगा. बड़े-बड़े सेठ-साहूकार एक दिन में दिवालिया हो जाते हैं, बड़े-बड़े राजे-महाराजे खाने के मोहताज़ दिखाई देते हैं. कहाँ गयी वह ख़ुशी?

हम यहाँ आये हैं दुनिया का तज़ुर्बा करने के लिए. इसलिए यह ज़रूरी है कि जितना आवश्यक हो उतना उसमें घुसो यानी ज़रुरत के मुताबिक उसमें व्यवहार करो लेकिन उसे अपना लक्ष्य मत बनाओ. अगर उसी को सब कुछ समझ रखा है तो ईश्वर के दरबार में कैसे घुसोगे? लोग कहते हैं कि तरक़्क़ी नहीं होती. फंसे हुए हैं दुनिया में, एक दो दिन को शौकिया सत्संग में आये तो आ गए, घर पर भी कभी संध्या-पूजा कर ली तो कर ली नहीं तो दुनिया के धंधों में ही लगे रहे. मकान बनवाने क़ी ख़्वाहिश हुई तो उसको बनाने के लिए रुपए के इंतज़ाम की फ़िक्र हुई, क़र्ज़ लिया या और कहीं से इंतज़ाम किया. जब मकान बन कर तैयार हो गया और कर्ज़ा

भी अदा हो गया तो तो यह फ़िक्र हो गयी कि कोई किरायेदार नहीं मिलता. जब किरायेदार मिल गया, माल इकठ्ठा होने लगा तो चोर-डाकू आने लगे, रखवाली की फ़िक्र बढ़ गयी.

क्या ज़िंदगी भर यही करते रहोगे? ईश्वर का ध्यान कब करोगे? किसी को देखो तो वो बेटों की शिकायत करता है कि वे कहना नहीं मानते. यह तो दुनियाँ का कायदा है. बेटा अपना घर देखें या तुम्हारा? इसमें शिकायत काहे की? बहुएं आती हैं अपना घर छोड़कर. बेटा बहू की नहीं सुनेगा तो क्या तुम्हारी सुनेगा? सासें शिकायत करती हैं कि जब से बहू आई है तब से बेटा हमारी बात नहीं सुनता. उनसे कोई पूछे क्या तुमने अपने बेटे को परमेश्वर समझ रखा है कि वही तुम्हारा पालन-पोषण करेगा? क्या तुम उससे पहले भूखे मरते थे या उसके बाद भूखे मरोगे? तुमने अपना फ़र्ज़ पूरा कर दिया. अब यह तुम्हारे बेटे की ज़िम्मेदारी है कि वह अपना फ़र्ज़ पूरी तरह अदा करता है या नहीं. अगर वो अपना फ़र्ज़ अदा नहीं करता तो इसमें दुखी होने की क्या बात है? अगर लड़कों के झंझट में पड़े रहोगे तो ईश्वर की तरफ ध्यान कैसे लगेगा ?

जो चीज़ हमें ईश्वर से दूर करती है, हमें चाहिए कि उसे छोड़ते चलें और जो चीज़ हमें ईश्वर के नज़दीक लाती है, उसे अपनाते चलें. लेकिन हम ऐसा कर नहीं पाते. बात क्या है? अभी अधिकार पैदा नहीं हुआ है. संस्कार तो बना और मनुष्य जन्म भी मिल गया लेकिन अगर अधिकार भी बनता तो गुरु की ओट लेते जिससे मन से पिण्ड छूट जाता. लेकिन जो मन को ही अपना साथी समझते हैं और ईश्वर को नहीं चाहते और मन के कहने पर ही चलते हैं,उन पर मन हर समय हावी रहता है.

आम शिकायत है कि मन नहीं मानता. तुम्हें अपनी तो अपनी,अपने रिश्तेदारों तक की फ़िकर पड़ी है. उनकी उलझनों की भी ज़िम्मेदारी तुमने अपने ऊपर ले रखी है. कहते हैं कि फ़लां (अमुक) ने ये बुराई की और फ़लां इस तरह ख़राब है. तुम क्या इसी काम के लिए यहाँ आये थे और क्या यह काम तुम्हारे ही सुपुर्द है? ईश्वर तमाम दुनिया का मालिक है. तुम अपने आप को मालिक समझते हो. तुम ईश्वर का मुक़ाबला करते हो और हो कुछ नहीं. फिर कहते हो कि मन नहीं लगता.

फंसे तो तुम खुद हो, गुरु तुम्हें कैसे हटाए? जब तुम खुद निकलना चाहोगे, तब गुरु तुम्हारी मदद करेगा. मदद उनके लिए है जो निकलना चाहते हैं और उसके लिए कोशिश करते हैं मगर निकल नहीं पाते. चाहते हो कि तुम्हारे दुनियां के सब काम पूरे होते रहें और तुम्हें दीन भी मिल जाए. यह नहीं हो सकता. एक गुरु नहीं

अगर सारे गुरु भी ज़ोर लगाएं, तो भी जब तक तुम खुद नहीं निकलना चाहोगे तब तक कोई मदद नहीं कर सकता.

सन्त तो दुनियाँ उजाड़ने आते हैं, आग लगाने आते हैं. आग लगाने का मतलब यह है कि दुनियाँ में कर्म करते हुए उसमें फंसो मत, उसे मुख्य मत समझो, मन को और अपने आपको भी दुनियाँ से निकालो.

ख़ुदी (अहं) क्या है? ख़ुदी यह है कि मन चाहता है कि मैं जिसको चाहूँ उसको अपनी मर्ज़ी से चलाऊ. धरम पर चलने के बाद भी कोई-कोई दुखी रहता है. ऐसा क्यों है? ऐसा इसलिए है कि ख़ुदी बीच में है. चाहते हैं कि जैसा मैं कर रहा हूँ वैसा ही सब करें. जब तक दुनिया तुम्हारे सामने है और तुमने उसी को मुख्य समझ रखा है, तब तक ईश्वर तो मिलता नहीं. इसलिए पहले अपनी सहायता आप करो. तुम खुद फंसे हो. मन की ज़ंजीरों में तुम खुद जकड़े हो, अगर तुम उन्हें काटना पसंद करोगे तब गुरु तुम्हारी मदद करेगा. जब तक उसमें फंसे रहोगे उसमें और फंसते जाओगे तो दूसरा यानी गुरु तुम्हारी क्या मदद करेगा?

हम ख़ुदा ख़्वाही व दुनियाँ ए दूँ

ई ख्यालस्तो मुहालस्तो जिनूं

(भावार्थ: चाहते हो कि दुनिया भी मिल जाए और ईश्वर भी मिल जाए . ऐसा ख्याल करना पागलपन नहीं तो और क्या है.)

==========

राम सदेश : दिसंबर १९९३

दीन भाव

मन में तरंगें उठें तो सुमिरन व भजन करना चाहिये. सुरत को तीसरे तिल में मेटें. दोनों आंखों की रोशनी जहां मिलती है वहीँ ध्यान करना चाहिये. वहाँ ध्यान जमाने से प्रकाश नज़र आयेगा. शब्द भी वहीं पर सुनाई पड़ता है, परन्तु यह अन्तर में सुनना चाहिये. गुरु का ध्यान करना स्थूल, व शब्द का सुनना अथवा प्रकाश का देखना सूक्ष्म है. गुरु ध्यान करते - करते जब प्रकाश दिखाई देने लगे अथवा शब्द सुनाई पड़ने लगे तो फिर ध्यान को छोड़कर उसी को करने लगना चाहिये. अगर प्रकाश देखने या शब्द सुनने के साथ - साथ गुरु का ध्यान भी करते रहें तो चित्त ठिकाने न रहेगा और दोनों में से कोई भी नहीं हो सकेगा. नियमित ढंग से साधन में जब पुष्टता आयेगी तभी शब्द और ध्यान दोनों चल सकते हैं. तसबीर को सामने रख कर या किसी मूर्ति आदि पर ध्यान नहीं करना चाहिये. अगर गुरु सामने मौज़ूद हों, तो भी उनकी ख़्याली शक़्ल का ही ध्यान करना चाहिये. हाँलाकि यह ख़्याली शक़्ल का ध्यान भी स्थूल ही माना जाता है, पर शुरु - शुरु के अभ्यासियों को ऐसा करना कठिन होगा. चूँकि आत्मा के केन्द्र में ही परमात्मा है अतः उसका अनुभव हाँसिल करने के लिए ऐसी हालत पर आना है जहां कोई ख़्याल न हो. ध्यान अन्तर में होवे. इसके लिये यह आवश्यक है कि हमारी सुरत (attention) जो अभी बाहरी पदार्थो में लगी हुई है - वहाँ से हटे और सिमट कर अन्तर में लौटे. मन की धार यानी संकल्प - विकल्प जब तक शान्त न होंगें तब तक ध्यान पक्का नहीं हो सकता . मन काल का अंश है . यह सुरत को दुनियाँ और दुनियांवी पदार्थों की तरफ़ बिखेरता रहता है. मन सबसे अधिक तीव्र गति वाला और महा चंचल है, कभी शान्त नहीं रह सकता. इसकी उपमा शान्त -प्रशांत तालाब के जल से दी गई है. जैसे प्रशांत जल में हवा चलने से या हलकी से हलकी चीज़ फेंकने पर छोटी - छोटी तरंगें उठने लगतीं हैं वैसे ही इंद्रियों के प्रभाव से या शरीर के ज़रा से हिलने मात्र से मन में संकल्प - बिकल्प उठने शुरु हो जाते हैं. योग , यज्ञ, तप, तीर्थ, व्रत, नियम, पूजा आदि जो कुछ भी किए जाते हैं, पहले -पहल वे सब मन को शान्त करने के लिये ही किये जाते हैं. इन तरंगों की रोक -थाम सुमिरन व ध्यान से की जाती है. इसमें भींचा-भींचीं करनी पड़ती है. मन को वासनाओं से हटाना, भींचा - भींचीं कहलता है. इसके लिए कम खाना, कम सोना, कम बोलना, एकांत सेवन और ज्यादातर समय ध्यान में रत रहने की सलाह संत लोग देते हैं .

सुःख प्राप्ति से मन मोटा होता है. सुःख साधना में महा बाधक होता है. परमात्मा की याद दुःख में ही आती है. इसलिए दुःखों को परमात्मा की नियामत समझा जाता है. कहा भी है - " सुःख के माथे सिल परे, जो नाम हिए से जाय, बलिहारी वा दुःख की, जो पल -पल नाम रटाये . "

मन और माया को कमज़ोर करने के लिए अपने आप को दीन समझें. जब तक दीनता नहीं आती, तब तक आपा नहीं मिटता. आपा मिटे वगैर आत्मा का साक्षात्कार नहीं हो सकता और न आत्मानुभव के बिना उद्धार ही होता है. स्वार्थ और परमार्थ साथ- साथ नहीं रह सकते. केवल एक ही रह सकेगा. ख़ुदा (ईश्वर) को पाने के लिए खुदी (अहमपने) को निर्मूल करना पड़ेगा और वह तभी होगा जब दुनिया से सच्चा वैराग और गुरु चरणों में अनुराग होगा. वैराग का यह मतलब कदापि नहीं कि घर -बार, स्त्री ,परिवार आदि को छोड़कर जँगल में चला जाय. जंगल में जाने से क्या कहीं वैराग हो सकता है ? शरीर और मन तो वहाँ भी रहेंगे और जब ये रहेंगे तो इनके व्यबहार भी करने ही पड़ेंगे. सच्चे मायने में वैराग का अर्थ वीतराग होना है, यानी किसी चीज़ में राग (आसक्ति) न हो. शरीर से सब कुछ भोगता हुआ भी किसी चीज़ से लगाव न रहे और न कहीं अटकाव हो. चरणों में अनुराग से मतलब है कि हर समय अपने को, अपनी सुरत को परमात्मा के चरणों में लगाए रखें और उसकी मौज़ में अपने आप को लय कर दें. इस रास्ते में अनेकों कठिनाइयाँ आवेंगी, परंतु उनसे घबराएं नहीं. धैर्य पूर्वक गुरु में पूर्ण प्रीति और प्रतीत के साथ उनका बताया हुआ साधन करते जाय. सहायता अवश्य मिलेगी. तन का सुःख, इंद्रिय सुःख, मन का सुःख और बुद्धि का सुःख - इन सबको समता में लाकर इष्ट के अर्पण कर दें, अपने आप को पूर्ण रूप से उसके हवाले कर दें. इसके बाद कुछ करना धरना नहीं रहता. एक दीन भाव ही उसे निकाल ले जायेगा .

राम संदेश : अप्रैल , १९७९.

दीनता परमार्थ में अनिवार्य है तथा अहंकार बाधक

प्रत्येक मनुष्य की अपनी प्रथक स्थिति होती है. राजसिक वृत्ति के मनुष्य कभी तामसिक वृत्ति की ओर जाते हैं, कभी सात्विक वृत्ति की ओर. कहने का भाव यह है कि मनुष्य के अन्तर में निरन्तर घटाव - बढ़ाव होता ही रहता है. इससे घबराना नहीं चाहिये. प्रयत्न यहीं होना चाहिये कि साधक जहां खड़ा है, उससे नीचे न गिरे, आगे की ओर बढ़ता जाए. तामसिक वृत्ति से राजसिक वृत्ति की ओर, और इससे आगे सात्त्विक वृत्ति की और चलता जाये. साधक जब नीचे की ओर जाता है तो घबरा जाता है. घबराना नहीं चाहिये. यह तो स्वाभाविक प्रवत्ति है, संस्कारों के कारण मन इधर - उधर भागता है. कभी साधक आकाश में उड़ता है, कभी उसे अपने पैर की पीठ भी नहीं दीखती. मन एक क्षण में क़ाबू में नहीं आ सकता प्रत्येक मनुष्य को अपनी स्थिति समझनी चाहिये तथा अपने इष्टदेव का आश्रय लेकर आगे की ओर प्रगति करते रहना चाहिये. ऐसा करने से अन्तर में शान्ति रहेगी, नहीं तो मन सर्वदा अकारण ही चंचल तथा दुःखित रहेगा. संत कौन है ? जिस महापुरुष ने अपनी स्थिति को खोकर ईश्वर से एकता प्राप्त कर ली है तथा उस अवस्था में जो निरन्तर एकरस रहता है वह संत है. उसकी दृष्टि भेदरहित होती है. वह अपने में, ईश्वर में तथा औरों में कोई अन्तर नहीं देखता. उसे सदैव ईश्वर के अतिरिक्त और कुछ अनुभव नहीं होता.

समय पाकर सभी महापुरुषों के सत्संग से लाभ अवश्य होता है, परन्तु ऐसे भी संत होते हैं, तथा हैं, जिनकी क्षण भर की दृष्टि से साधक के आचरण में युगपरिवर्तन आ जाता है. इतिहास बताता है कि जिन मनुष्यों के विषय में कभी यह अनुमान भी नहीं किया जा सकता था कि उनका कभी सुधार होगा वे संतों के क्षण भर के दर्शनों से भवसागर पार हो गये. संत ज्ञानेश्वर जी ने भैंसों से वेदमंत्रों का शुद्ध उच्चारण करवाया. गुरु हरकिशनदेव जी ने अपने अशिक्षित बाबर्ची से प्रसिद्ध पंडितों को शास्त्रार्थ में पराजित करवाया. अनेकों ऐसे और उदाहरण हैं. संत चाहें तो अपनी पृथक श्रष्टि बना सकते हैं, परन्तु वे दीनता के स्वरूप होते हैं. प्रभु की मौज को अपनी प्रसनन्ता समझते हैं.

दीनता परमार्थ में अनिवार्य है तथा अहंकार बाधक है. जहाँ दीनता नहीं है वहाँ परमार्थ की उन्नति नहीं हो सकती इसलिए साधक को चाहिये कि वह निरन्तर अपने अंतर को टटोलता रहे कि वह अभिमान की ओर तो नहीं जा रहा है. अपने अहं को सत्संग, विवेक, वैराग्य तथा अभ्यास द्वारा समाप्त कर देना चाहिये. ' मैं ' और 'मेरे पन ' को ख़त्म करना चाहिये .

वास्तव में ईश्वर की मौज़ में निरन्तर प्रसन्न रहना ही दीनता है. दीन पुरुष अपना कुछ भी नहीं समझता. वह सब कुछ ईश्वर का ही समझता है. इसलिए यदि कुछ प्राप्ति होती है तो उसे हर्ष नहीं होता, वह उसका गर्व नहीं करता. यदि कुछ हानि होती है तो वह अप्रसन्न नहीं होता. वह तो एकरस रहता है. वह सब कुछ ईश्वर का ही समझता है - "कबीर मेरा मुझमें कुछ नहीँ, जो कुछ है सो तोर, तेरा तुझ को सौपंते क्या लागे है मोर ." कबीर साहब अपने आप को कुत्ता कहते हैं . ईश्वर ने उनके गले में रस्सी डाली हुई है, जैसा वह (ईश्वर) खींचता है वैसे ही वह खिंच जाते हैं . " कबीरा कूकर राम की, मुतिया मेरों नांव, गले हमारी जेवरी, जें खींचें तैं जाँव".

परमार्थ का मुख्य ध्येय है कि मनुष्य अपने आप को ईश्वर के चरणों में पूर्णतयः समर्पण कर दे. यह समर्पण मन से होना चाहिये. कथनी तक ही सीमित नहीं रहना चाहिये. प्रभु की रहस्यमय लीला में सदा प्रसन्न रहना चाहिये, उसमें दोष नहीं देखना चाहिये. वह जो करता है हमारे हित के लिए ही होता है .

राम संदेश : मार्च , १९६८.

पढ़ो और मनन करो

1- मन में मान (egoism) बड़ा कट्टर दुश्मन है और काटे जाने पर भी चोरी छिपे साधक पर हमला करता है. यहीं सबसे बड़ा दुश्मन है और सब विकारों की जड़ हैं. इससे होशियार रहना चाहिये. जब मन में मान आवे, किसी बात पर अहँकार पैदा हो, तब तुरन्त ही यह ख़्याल पैदा करो कि " जो कुछ हुआ सब गुरु कृपा या ईश्वर कृपा से हुआ, मालिक की दया से हुआ, मेरी क्या सामर्थ्य जो मैं ऐसा कर सकता. "अहं (ego) को दीनता में बदल दो. इससे मन का मान घट जाता है और ईश्वर प्रेम बढ़ता है. अपने आप को दुनियाँ का सेवक समझो, सब में ईश्वर का रूप देखो-इससे दीनता आती है.

2- जो सत्संगी सत्संग में आकर संसार और उसके भोग-विलासों की बातें करते हैं, वे अभागेहैं. क्या उन्हें इस काम के लिए अपने घर में फुरसत नहीं मिलती? अपना रास्ता खोटा करते हैं और दूसरों के लिए रोड़ा बनते हैं. परन्तु ऐसे लोगों से भी अधिक अभागे वे हैं जो सत्संग में आकर उनकी बातें चित्त देकर सुनते हैं. परमात्मा ऐसे लोगों पर रहम करें.

3- इन्सानी ज़िन्दगी का आदर्श यह है कि अपने आप को पहिचानें कि "मैं क्या हूं "? ईश्वर को पहिचाने और उसमें स्वयँ को लय कर दें. जो इस आदर्श का रास्ता दिखाये वही सच्चा मज़हब है और जिसने इस आदर्श की प्राप्ती कर ली है वही सच्चा गुरु है. जो इस आदर्श की प्राप्ति करना चाहता है, वही सच्चा भक्त है. जब ऐसा शिष्य हो और ऐसा गुरु हो तभी सच्चे लक्ष्य की प्राप्ति मुमकिन है.

4- अगर कोई तुम्हारे सामने किसी की बुराई करता है तो यह समझ लो कि वह तुम्हारी भी बुराई किसी और के सामने कर सकता है. यह आदत परमार्थ में बड़ा विघ्न डालती है. दूसरों की एबजोई (पर-दोष-दर्शन) पाप है. ऐसा आदमी तरक्क़ी नहीं कर सकेगा. बुराई करने की आदत छोड़ो.

5- प्रेम चाहे किसी दुनियांदार से हो या ईश्वर से , उसमें कोई ग़रज़ नहीं होनी चाहिये. जहाँ ग़रज़ होतीं है, उसे प्रेम नहीं कहते. वह सौदेबाज़ी है. गुरु से प्रेम करो और कुछ न चाहो. अपने मन से पूंछो की क्या चाहते हो और जबाब मिले कि कुछ नहीँ चाहते, हमारा प्रीतम खुश रहे, बस यहीं चाहते हैं. हमारा रास्ता प्रेम का रास्ता है. प्रेम में जहाँ ग़रज़ शामिल होती है, वहीं रास्ता बंद हो जाता है.

6- अपने मन की हालत पर चौकसी रखो. देखो कहाँ-कहाँ जाता है. विघ्न आएं, उनसे उसको हटाते रहो और गुरु के चरणों का सहारा लो. जहाँ तक हो सके, अपने सत्संगी भाईयों की या अन्य परमार्थियों की मदद करो, और जो ऐसा न कर सको तो उनका किसी तरह का परमार्थी नुकसान करने की इच्छा मत करो. इन बातों पर चलने से हर सत्संगी की तरक्क़ी होगी. सतगुरु ख़ुश होकर उसे प्रेम दान देंगे जो उसे संसार सागर से पार कर देगा .

7- संत के पास जाकर बैठे रहो और मन में कोई ख़्याल मत आने दो, फ़ायदा हो जायेगा. बेबकूफ़ लोग समझते हैं कि हम संत के पास गये लेकिन उसने हमसे बात भी नहीं की. बात की या नहीं की, इससे तुम्हें क्या मतलब ? हर बक्त उसके अन्दर से आत्मा के प्रकाश की और आनन्द की शीतल धारें निकल रही हैं जिससे फ़ायदा हो रहा है. सूरज चमक रहा है. अगर तुमने अपनी आँखें बंद कर रखी हैं तो इसमें सूरज का क्या दोष है? क्या वह किसी से बात करता है? नहीं. लेकिन उसके प्रकाश और गरमी से सबका फ़ायदा होता है.

8- भोगने की बनिस्बत भोगने की इच्छा ज़्यादा नुकसान करती है. मन भोगों की गुनावन उठाया करता है चाहें उसके पास उनके भोगने के साधन हों या न हों. इसका आसान तरीक़ा यह है कि मन को भजन, सुमिरन और ध्यान में लगा दो.

9- ईर्ष्या कई तरह की होती है. किसी की सांसारिक तरक्क़ी, धन-दौलत, मान-बढ़ाई, आदि को देखकर ईर्ष्या करना निहायत नीचे दर्ज़े का ओछापन है. यह सब अपने-अपने संस्कारवश होता है. पिछले जन्मों में जिसने जैसा किया वैसा उसने इस जन्म में पाया. तुमने जैसा किया होगा, वैसा तुम पा रहे हो. उसमें ईर्ष्या या जलन की बात ही क्या है? अगर कोशिश करो तो तुम्हें भी वही दुनियाँ के सामान और मान आदर मिल सकते हैं जो औरों के पास हैं और जिनसे तुम्हें ईर्ष्या होतीं है. लेकिन ऐसी कोशिश किसी ख़ास जगह और ख़ास मौक़े पर भले ही मुनासिब हो अन्यथा साधक के लिये यह नीचे ले जाती है, दुनियाँ में फंसाती है और आगे के लिए सँस्कार जमा करती है .

अगर किसी ऐसे साधक को देखकर जो तुमसे ज़्यादा तेज़ चल रहा है और परमार्थ के रास्ते में तुमसे ज़्यादा तरक्क़ी कर रहा है, ख़्याल चौप का पैदा होता है तो यह बात किसी कदर फायदेमंद हो सकती है. उसे देखकर तुम्हारा मन भी यह इरादा करेगा कि तुम भी ऐसी ही सेवा और प्रेम करो जिससे तुम्हारी भी परमार्थ में इसी तरह तरक्क़ी हो. यहाँ तक तो उचित है. लेकिन सत्संगी भाईयों की तारीफ़ सुनकर, उनकी तरक्क़ी देखकर बिना बात जलना या बैर विरोध करना और उनकी बुराई करना यह बहुत अधिक विघ्नकारक है.

10- भक्ति बढ़ाने के लिए सबसे ऊँचा तरीक़ा यह है कि मन के फंदे से बचें और ईश्वर से नाराज़ न हों. ज़रा गर्मी हो जाए तो कहने लगते हैं कि हाय बड़ी तपन है. कभी बारिश ज़्यादा हो गई तो लगे परमात्मा को कोसने. ये सब बुरी बातें हैं. परमात्मा के सब काम सर्व हित के लिए होते हैं. वह जो करता है सब अच्छाई के लिए ही करता है. लेकिन आम लोग उसके कामों को अपने मन की कसौटी पर परखते हैं. इसलिए जिस हाल में वह रखे उसी में खुश रहो. उफ़ भी न करो, कोई ख़्वाहिश न उठाओ. शुक्र वही है कि अगर तक़लीफ़ भी हो रहीं हो तो भी उसकी सराहना करो. हर समय राज़ी- व-रज़ा रहो.

11- कभी किसी की बुराई न करो. जब-जब बुराई करने का ख़्याल मन में आवे तब-तब यह सोचे कि अगर तुम्हारे लिए भी कोई इस तरह करे तो तुम्हें कैसा लगेगा? इससे यह ख़्याल टूट जाता है.

12- क्या जीव ईश्वर से मिलने के बाद नाश हो गया? नहीं, वह तो अमर हो गया. जहाँ-जहाँ ईश्वर है वही वह जीव भी मौज़ूद है. इसी तरह मोक्ष पुरुष मरते नहीं. वे हमेशा-हमेशा ईश्वर में रह कर सर्व व्यापी हमेशा -हमेशा ज़िन्दा रहते है. इसलिए गुरुजन मरते नहीं हैं .

13 - उन लोगों से दूर रहें जो निपट संसारी हैं और जिनके मन में सिवाय संसार और उसके भोग विलास की बातों के और कुछ नहीं है. वे ईश्वर से विमुख हैं और जो कोई उनके सम्पर्क में आवेगा उसे भी ईश्वर से विमुख कर देंगे उनकी संगत में बैठने से तुम इधर -उधर की बातें सुनोगे, दुनियाँ की चीज़ों और भोगों के हाल सुनकर तुम्हारे चित्त में भी उनकी याद हरी हो जायेगी. इससे दुःख पैदा होगा और भजन और अभ्यास के समय भी वे याद आकर तुम्हारी साधना में विघ्न डालेंगी.

14- जब दो तारों में गाँठ लग जाती है तो वे अलग नहीं हो सकते. उन्हें अलग अलग करने के लिए गाँठ खोलनी पड़ेगी. इसी तरह मन और आत्मा में गाँठ पड़ गई है. जब गाँठ छूट जाय तब परमात्मा के दर्शन हों. अज्ञानता ही यह गाँठ है .

राम संदेश : मई १९७९

परमार्थ दीनता से बनता है

परमार्थ दीनता से बनता है, केवल बल और पुरुषार्थ से नहीं. जब तक ईश्वर की कृपा नहीं होगी, काम नहीं बनेगा. सच बात तो यह है कि निम्नलिखित तीन बातें सभी सत्संगी भाइयों को याद रखनी चाहिए, और इसी से ईश्वर कृपा प्राप्त होगी.

१) केवल पुरुषार्थ से परमार्थ नहीं बनेगा.

२) ' परमात्मा चाहेगा तो हम से करा लेगा ' - केवल यह कहने से काम नहीं चलेगा.

३) परमार्थ के लिए प्रयत्न करना होगा और ईश्वर के सामने दीन बनना पड़ेगा. दीन बनना यह है कि ईश्वर के हुक्मों पर यानि धर्म और सत पर चलना. दीनता आने पर ईश्वर प्रेम जागेगा, ईश्वर कृपा होगी, और ईश्वर कृपा होने पर परमार्थ बनेगा.

इंसान नहीं जानता कि वह चाहता क्या है और मांगता क्या है? इंसान अंतःकरण के घाट पर बैठा है. जैसी चाह उठती है वैसा ही वह करता है. जब परमात्मा के दर्शन की चाह होती है तो वह बेज़ार हो जाता है और ऐसा लगता है कि वह अब इस दुनियाँ की चीज़ें नहीं चाहता. पर उसे मालूम नहीं कि उसके अन्दर और बहुत सी चाहों के अम्बार लगे हैं. जब उनकी चाह उठेगी परमात्मा की चाह जाने कहाँ चली जाएगी.

अभ्यास यह है कि मन का घाट बदला जाय और चाहों (इच्छाओं) को एक-एक करके नष्ट कर दें. छोड़ना तो यह है कि अन्दर कोई चाह बाकी न रहे. यदि आपके अन्दर की चाहें बनी हुई हैं तो केवल जंगल में जाने से वैराग्य नहीं होता. इसलिए सन्त कहते हैं कि ऐसी ख्वाहिशों को जो दुनियाँ के विरुद्ध नहीं हैं, पूरा कर देने में कोई आपत्ति नहीं है. परन्तु भोग को शास्त्रों के मुताबिक़ भोगो.

प्रारम्भ में उन चीज़ों को छोड़ो जो छोटी-छोटी चीज़ें हैं और आसानी से छोड़ी जा सकती हैं. बड़ी चीज़ों को पहले लेने से निराशा होगी. आदतों का क़बूल कर लेना आसान है लेकिन उनको छोड़ना उतना ही मुश्किल है. शुरुआत छोटी-छोटी चीज़ों से करो. जब इनमें कामयाबी मिलेगी तो हिम्मत और शक्ति कुछ और बढ़ जाएगी, तब बड़ी-बड़ी चीज़ों से लड़ सकोगे. जब तक क़ुर्बानी न कर सको, तब तक बड़ी चीज़ों से मत लड़ो. रास्ता मन और बुद्धि के द्वारा ही चलना है. जब तक मन और बुद्धि शुद्ध और शांत नहीं होंगे तब तक आत्मा दोनों से न्यारी नहीं होगी और ईश्वर के चरणों में नहीं लगेगी.

यह प्रेम-मार्ग है, कर्म-मार्ग नहीं. प्रेम-मार्ग बड़ा ही ऊंचा है. इसमें मन और बुद्धि को शुद्ध करते हैं. मन में मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार सब आ गए इन सभी को शुद्ध करने के पश्चात् ईश्वर के दर्शन हो पाते हैं.

जब दो तारों में गांठ लग जाती है तो वे अलग नहीं हो सकते. उन्हें अलग करने के लिए गांठ खोलनी पड़ती है. इसी तरह मन और आत्मा में गांठ पड़ गयी है. जब यह गाँठ छूट जाय तो परमात्मा के दर्शन हों. अज्ञानता ही यह गाँठ है. सांसारिक चीज़ों को अपना समझने लगे और सारी दुनियांवी चीज़ों में आनंद देखने लगे, यही अज्ञानता है. आनंद तो आत्मा में है न कि विषयों में या दुनियां में. जब ज्ञान द्वारा यह भ्रान्ति छूट जाती है तब मालुम पड़ता है कि आनंद तो आत्मा में ही है, इन वस्तुओं में नहीं .

जब आप सोते हैं तो स्वप्न देखते हैं और स्वप्न में सुखी और दुखी होते हैं. परन्तु आँख खुलने पर सब झूंठा जान पड़ता है. स्वप्न में कभी आप राजा बनते हैं और कभी क़त्ल किये जाते हैं. राजा बनने पर ख़ुशी होती है और क़त्ल किये जाने पर दुःख. यह सभी सुख-दुःख भ्रान्ति होने के कारण था. इसी प्रकार हम सांसारिक वस्तुओं के मोह में फंस जाते हैं और भ्रान्तिवश उनमें सुख खोजते हैं.

ख्याल से ही हम भ्रान्ति में फंसे हैं और ख्याल से ही छूटेंगे. यह सारी दुनियाँ ख्याल से ही बनी है और ख्याल से ही छूटेगी भी. इसलिए सतगुरु का ख़्याल बाँध कर इन सभी सांसारिक वासनाओं और भोगों को काटते जाओ. यही सबसे नज़दीक रास्ता ईश्वर को पाने का है.

राम सन्देश : जनवरी-फरवरी १९९८

मनमानी मत करो

ईश्वर की भक्ति सभी में है और सभी ईश्वर की प्राप्ति कर सकते हैं, लेकिन हमारा मन विघ्न डालता है. इसलिए हमें अपने मन से सावधान रहना चाहिए. यानी जो हमारे मन को भाये वह ही नहीं करना चाहिए. इससे मन शक्तिशाली और मोटा हो जाता है. बाप को बेटे से मोहब्बत होती है और वह सदा उसका फ़ायदा चाहता है. उसको नसीहत भी उसी काम की करता है जिसमें उसका भला हो.

जो बाप ईश्वर का भक्त है तो यह ज़रूरी है कि मामूली आदमियों के मुक़ाबले में उसकी बुद्धि ज़्यादा शुद्ध हो चुकी है और वह बहुत दूर तक की सोच सकता है जिसे आम आदमी नहीं सोच सकते. जब आपने यह मान लिया कि यह हमारे हितेषी हैं, यह जो बात कहेंगे हमारे हित की कहेंगे, तो फिर तुम्हें मनमानी नहीं करनी चाहिए. जब दुनियां के मामलों में आप हमारी बात नहीं मानते तो फिर परमार्थ के मामलों में क्या मानोगे? बात क्या है - क्योकि आपका मन बीच में बिघ्न डालता है.

मान लीजिये कोई बात आपके आचार्य ने आपसे कही या किसी के ज़रिये अपने ख्याल को ज़ाहिर किया तो अच्छाई इसी में है कि उसे मान लेना चाहिए. आपको अपनी अक्ल से उसे परखना नहीं चाहिए. गुरु जो कुछ करेगा, आपके फायदे के लिए ही करेगा. अगर तुम उसकी बात को नहीं मानोगे और बुरा मान कर बैठ जाओगे तो फ़ायदा क्या होगा? देखने में आता है कि गुरु की बात को मानते वहां तक हैं जहाँ तक आपका मन उस बात को क़बूल करता है. गुरु के मुक़ाबले आपने अपने मन को ज़्यादा महत्वपूर्ण मान लिया है और मन को ही अपना दोस्त समझ रखा है. लेकिन तुम यह भूल जाते हो कि हमारा मन ही हमें दुनिया में ले जाकर फंसाता है. जब मन को ही दोस्त मान रखा है, उसी का कहना करते हो तो इस दुनियाँ से निकलोगे कैसे? अगर तुम गुरु को अपना सच्चा हितेषी मानते हो तो उसकी बात भी मानो.

ऐसे भी लोग हैं कि जिनके पास धन की कमी नहीं है. अगर वह घर बैठ कर भी खाएं तो शायद उनकी तीन पीढ़ियां भी उसे ख़तम नहीं कर सकें. फिर भी रूपये में फंसे हैं, परमार्थ क्या कमाएंगे? जिसे अपने कुटुम्ब का पालन-पोषण करना है उसे तो नौकरी या तिज़ारत करनी ही पड़ेगी. उसकी बात अलग है. लेकिन नौकरी-पेशा या दुकान करने वालों को भी दुनियाँ में, अपने पेशे में, ईमानदारी से बरतना चाहिए. क्या आजकल नौकरी में और दुकानदारी में ईमानदारी है? कोई भी अपना काम साफ़ नियत से नहीं करता और अगर करने की कोशिश भी करे तो लोग करने नहीं देते. खैर किसी हद तक यह भी क्षमा के योग्य है. लेकिन जिनके पास बहुत

काफी धन-जायदाद है और फिर भी वोह फंसे हुए हैं, वे मन के ग़ुलाम हैं, परमार्थ कैसे कमाएंगे? किसी संत ने कहा है : "ख़ुदा ख़ुदा भी करे और खुदी का दम भी भरे, बड़ा फरेबी है, झूंठा है वो ख़ुदाई का" .

दुनियाँ तो छोड़ना नहीं चाहते, एक क़दम आगे नहीं बढ़ना चाहते और चाहते हो तरक़्क़ी हो. कैसे हो ? जब तक ख़ुद कोशिश नहीं करोगे तब तक गुरु-कृपा और ईश्वर-कृपा नहीं होगी. हम चाहते हैं कि हमारे सभी सत्संगी भाई यह समझ जाएँ. तुम उस मामले में जो परमार्थ की तरफ ले जाता है कुछ सुंनना नहीं चाहते, करना तो अलग रहा. भक्ति कैसे होगी? फिर शिकायत करते हो कि तरक़्क़ी नहीं होती .

इस दुनियाँ में हर चीज़ का बदला है. तुमने दान दिया, बड़ा अच्छा किया, लेकिन क्या उसे लेने वापस नहीं आओगे? लड़का नौकर रखा तो क्या उससे ख़िदमत नहीं चाहोगे? हो गया बदला या नहीं? अच्छे और शुभ कर्म , मन को सतोगुणी बनाते हैं लेकिन सतोगुणी मन भी आवागमन से नहीं छुड़ाता. जो कामी, क्रोधी और लालची हैं, वे परमार्थ के लायक नहीं हैं- यह संतों का कहना है. फंसे तो सब हीन अवस्था में हो और पहुंचना चाहते हो आसमान में. जिससे कहो कि तुम्हारी फलां बात ठीक नहीं है, वही नाराज़ हो जाता है. कोई बिरला है जिससे कहते हैं तो वह सुन लेता है वर्ना जिससे कहते हैं वह मुँह बना लेता है. कैसे तरक़्क़ी हो सकेगी? जो गुरु के कहने पर चला वह इस भवसागर से निकल गया. जो मन का साथी है वह गुरु का साथी नहीं. अगर तुम गुरु की सहायता करोगे तो वह तुम्हें मन के पंजे से निकाल देगा .

मोक्ष प्राप्त करने के लिए मन का मर्दन तो करना ही होगा. जब तक मन के चक्कर में फंसे रहोगे, मन तुम्हें इस भवसागर से नहीं निकलने देगा. तमोगुणी मन जानवर बनाएगा, रजोगुणी मन दुनियाँ में लौटा कर लाएगा. मरते समय सोचोगे कि यह काम रह गया वह काम रह गया. इसी में अटक कर प्राण निकलेंगे और फिर वापस इस दुनियाँ में आना पड़ेगा. सतोगुणी मन धर्म पर जाता है. आनंद तो दिलवाता है परन्तु वह भी मोक्ष नहीं देता.

जो काम करो, निष्काम भाव से करो, कोई ख्वाहिश मत उठाओ. यह ऊंचे अभ्यासियों के लिए है. सोते वक्त सोचो - "आज कोई इच्छा उठाई " ? अगर उठायी तो संस्कार बन गया. रात को सोने से पहले अपने मन से हिसाब लो. आगे जाकर भूख प्यास की ख्वाहिश भी मिटा देते हैं. मिल गया तो खा लिया, नहीं मिला तो सोच लिया कि आज परमात्मा की मर्ज़ी नहीं थी, और उसी हालत में खुश रहे. असली गुरु तो तुम्हारे अन्दर है, उसी से हिदायत मिलती है. लेकिन जब तक वहाँ पहुँच नहीं है, तब तक बाहरी गुरु से मदद लो.

जो आता है दुनियाँ के लिए रोता आता है. सन्तों के यहां दुनियाँ नहीं मिलती. वे तो दुनियाँ उजाड़ते हैं. यह अलग बात है कि किसी का परमार्थ बिगड़ रहा है और कोई दुनियाँ की कोई ऐसी मुसीबत है जो उसकी तरक़्क़ी में बाधक है, तो उसके लिए दुआ कर देते हैं. वर्ना जब हरेक को हर वक्त यही रोना है, तो कहाँ तक किस-किस के लिए दुआ करें. जितना दुनियाँ में फंसोगे उतनी ही ख्वाहिशें बढ़ेंगी, उतनी ज़्यादा दुःख-तकलीफें आएँगी. इसलिए दुनियाँ में उतना फंसो जितने में कम से कम काम चल सके, जितना कम से कम ज़रूरी हो. किसी काम को करने से पहले खूब सोच लो कि क्या यह काम वास्तव में ज़रूरी है, क्या इसके बिना काम नहीं चलेगा? अगर ज़रूरी हो तो करो, वर्ना छोड़ दो.

भक्ति बढ़ाने का सबसे ऊंचा तरीक़ा यह है कि मन के फंदे से बचें और ईश्वर से नाराज़ न हों. जरा गर्मी हो जाये तो कहने लगते हैं ' हाय बड़ी तपन है ' कभी वारिश ज़्यादा हो गयी तो परमात्मा को कोसने लगे. ये सब बुरी बातें हैं. परमात्मा के सब काम सर्वहित के लिए होते हैं. वह जो करता है किसी अच्छाई के लिए ही करता है. उसके कामों को अपने मन की कसौटी पर मत परखते रहो. जिस हाल में वह रखे, उस हाल में खुश रहो. उफ़ भी न करो. कोई ख्वाहिश मत उठाओ. 'शुक्र' वही है कि अगर तकलीफ़ भी हो रही है तो भी उसकी सराहना करो. हर समय राज़ी -बी-रज़ा में रहो. मान लो किसी का लड़का बीमार हो गया. अगर अच्छा हो गया तो खुश हैं और अगर मर गया तो लगे भगवान को कोसने, संध्या-पूजा बंद कर दी. यह नहीं सोचा कि जिसने दिया था उसने ले लिया. ये परमात्मा से मोहब्बत हुई या लड़के से?

मनमानी करना बंद करो. मन के बंधनों को ढीला करते चलो. हर एक चीज़ को परमात्मा की समझो. मोह छूटता जायेगा. जिस हाल में परमात्मा रखे, उसमें खुश रहो. गुरु के कहने पर चलो और परमात्मा की याद में रहो. ईश्वर तुम्हे प्रेम देगा.

राम सन्देश : जुलाई-सितम्बर , २०१७

मनुष्य जीवन का आदर्श सच्चे आनंद की प्राप्ति करना है

इंसानी-ज़िन्दगी (मनुष्य जीवन) का आदर्श क्या है? इंसानी ज़िदगी पाना यानी मनुष्य जन्म मिलना एक बड़ी खुशकिस्मती की बात है जिसका खास ध्येय यह है कि परमात्मा का अनुभव करें और दुनियावी प्रपंच से छुटकारा पाएं. अगर यह कीमती ज़िंदगी इस ध्येय की पूर्ती के लिए न लगाई गयी तो जानवर और इंसान की ज़िंदगी में कोई फर्क नहीं है. अगर हम सच्चे भक्त बन जाएँ तो हम कर्मों के जंजाल से छूट जायँ और इन्द्रियों के जाल से हमेशा-हमेशा का छुटकारा मिल सकता है.

जब तक हम दुनियावी बातों के बारे में सोचते रहते हैं और ख्वाहिशात उठाते रहते हैं हम कभी खुश नहीं रह सकते. जब हमारा मन और बुद्धि ईश्वर की तरफ़ लग जाते हैं तभी हमें सच्ची ख़ुशी हासिल होती है. परमात्मा की तरफ़ तवज्जह (ध्यान) लगाने और हमेशा-हमेशा को इस प्रपंच से छूटने और सच्ची ख़ुशी हासिल करने का साधन यही है कि हम उससे मिलने के लिए अपनी ख्वाहिश को जगाएं और उसे हर समय याद रखें. ईश्वर हर समय और हमेशा हमारे दिल में रहता है लेकिन उसके दर्शन तभी हो सकते हैं जब हम अपने मन को वासनाओं से साफ़ कर लें. हमें उस तक पहुँचने के लिए ख्वाहिश उठानी चाहिए. उसको हमेशा याद रखना चाहिए. उस तक पहुंचने का जतन करना चाहिए. उसी की बाबत सोचना चाहिए और आख़िर में पूर्ण रूप से अपने आप को उसके सुपुर्द कर देना चाहिए.

जब हम पूरे तौर से अपने आपको परमात्मा को समर्पण कर देते हैं तब हमें अपने अंतर में उसके दर्शन होते हैं और हमारी खुदी, जो हमारे और उसके बीच में पर्दा है, और जिसकी वजह से उसका अपने घट में रहते हुए भी हम दर्शन नहीं कर सकते, हमेशा के लिए जाता रहता है. ऐसा आदमी ईश्वर का ही रूप है. उसको सिर्फ शांति और आनंद ही नहीं मिलता, बल्कि साथ ही साथ, वह ईश्वर के कामों का ज़रिया बन जाता है और इससे दुनियाँ का बड़ा उपकार होता है. वह पृथ्वी पर जिस्म में ईश्वर रूप होकर रहता है और उसकी पूजा भी ईश्वर के समान ही होती है.

ईश्वर अपने भक्तों की पूजा करता है. गीता में लिखा है कि वह भक्त जिसको ज्ञान हो गया है या जिसने मोक्ष हासिल कर ली है, सचमुच ईश्वर है . भगवत गीता में श्रीकृष्ण भगवान ने जो कि स्वयं ईश्वर के अवतार थे, दुनियाँ को दिखलाया है कि वह किस तरह उन भक्तों तक पहुंचे, उनकी कितनी इज़्ज़त की है. उनका एक दीन भक्त सुदामा उनके दर्शन को द्वारका गया. जैसे ही उन्होंने उसको देखा, बड़े प्रेम से उनका स्वागत किया, उनको अपने सिंहासन पर बैठाया और उनकी पूजा की.

एक बार नारदजी द्वारका में श्रीकृष्ण भगवान के दर्शन करने को गए. महलों के दरवाज़े पर उन्हें रोक दिया गया. उनसे कहा गया कि इस समय भगवान किसी से नहीं मिल सकते क्योकि हमेशा की तरह वह इस समय पूजा कर रहे हैं. नारद को यह सुनकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि श्रीकृष्ण भगवान, जो स्वयं ईश्वर के रूप

हैं, किसकी पूजा कर रहे हैं. इस बात को जानने के लिए वह आहिस्ता से अन्दर गए और झरोकें में से देखने लगे जहाँ श्रीकृष्ण भगवान बैठे थे. उन्होंने देखा कि कृष्ण भगवान के सामने अंबरीष, द्रोपदी, बाल्मीक, नारद आदि बहुत से भक्तों की मूर्तियां रखी हैं. नारद अन्दर गए और श्रीकृष्ण भगवान से पूंछा कि वे यह सब क्या कर रहे हैं. श्री-भगवान ने उत्तर दिया- मैं अपने भगवान् की पूजा कर रहा हूँ और मेरे ईश्वर के स्वरूपों की मूर्तियां मेरे सामने रखी हैं.

सचमुच जब एक भक्त पूर्ण रूप से ईश्वर में समर्पण करके ईश्वर से मिलकर एक हो जाता है तो वह ईश्वर ही हो जाता है. दुनिया के अन्दर आदमी बहरी चीज़ों को हासिल करते हैं . लेकिन ऐसे भक्तों ने पूर्ण रूप से अपने मन को जीत लिया है और अपनी खुदी को ईश्वर में मिला दिया है और अपने अन्दर ईश्वर को पा लिया है. बाइबिल में लिखा है कि हज़रत ईसा मसीह ने एक जगह अपने शिष्य के पाँव धोये और उसकी पूजा की.

इन सभी ऊपर की बातों से पूर्ण रूप से स्पष्ट है कि ईश्वर के भक्त सचमुच में ईश्वर के अवतार होते हैं. शिव के भक्त इंसानी शक्ल में खुद शिव हैं और इसी प्रकार से विष्णु के भक्त इंसानी शक्ल में विष्णु हैं. बुद्ध भगवान् जिन्होंने अपने मन को काबू में किया और अपने दिल की गहराई में गए, उन्होंने अन्त में निर्वाण हासिल किया. ऐसे ही भगवान महावीर स्वामी या ख़ुदा के बन्दे हज़रत मौहम्मद साहब - जिन्हें आज भी लाखों -करोड़ों लोग पूजते हैं. इसी तरह की आला-अज़ीम शख्सियतों (श्रेष्ठ उच्च-कोटि के महामानवों) में हज़रत ईसा मसीह और हज़रत मूसा थे, जो ईश्वरीय प्रेम के नमूने थे. उनको भी करोड़ों आदमी पूजते हैं. इस पूजने का कारण यही है कि ईश्वरीय शक्ति, शान्ति, आनन्द इन महापुरुषों के दिल में ज़ाहिर हुए और उनके ज़रिये दुनियाँ को मिले.

ऐसी महान आत्माएं जगत के लिए एक बड़ी बरकत (वरदान) की चीज़ है. उन्होंने अपनी इस ज़िन्दगी को दूसरों के लिए ईश्वर प्राप्ति का एक साधन बना दिया जिसका सहारा लेकर मनुष्य उस महान शक्ति ईश्वर तक पहुँच सकता है. इसलिए इस इंसानी ज़िन्दगी का लक्ष्य उस ईश्वर को, जो इसके अन्दर रहता है, उसको ज़ाहिर (प्रकट) करना है. हमको चाहिए कि हम आहिस्ता-आहिस्ता दुनियाँ की ज़िन्दगी से अपने मुँह को अन्दर की तरफ मोड़ें और उस ईश्वर को अपने ही अन्दर पायें, तभी हमको सच्ची ख़ुशी हासिल हो सकती है - और यही इंसानी ज़िन्दगी का आदर्श होने चाहिए.

गुरुदेव तुम्हारा कल्याण करें .

राम सन्देश : दिसंबर, १९९४